दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९७ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २६ अंक नं० ११

सम्यक्दृष्टि की रीति

(मात्रिक कवित्त)

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

जाके घट समकित उपजत है, सो तौ करत हंस की रीत।
क्षीर गहत छाँड़त जल को संग, वाके कुल की यहै प्रतीत॥
कोटि उपाय करो कोउ भेदसों, क्षीर गहै जल नेकु न पीत।
तैसें सम्यक्वंत गहै गुण, घट घट मध्य एक नयनीत॥
सिद्धसमान चिदानंद जानिके, थापत है घटके उर बीच।
वाके गुण सब वाहि लगावत, और गुणहि सब जानत कीच॥
ज्ञान अनंत विचारत अंतर, राखत है जियके उर सींच।
ऐसें समकित शुद्ध करतु है, तिनतैं होतव मोक्ष नगीच॥

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मार्च : १९७१ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (३११) एक अंक २५ पैसा [फाल्गुन : २४९७

सोनगढ़ में कहाननगर को-आ० हाउसिंग सोसायटी

पूज्य श्री कानजीस्वामी के सत्संग एवं प्रवचनादि का लाभ लेने हेतु दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, जैसे दूर-दूर के नगरों से मुमुक्षु लोग सोनगढ़ आते रहते हैं। यहाँ लोगों को आवास संबंधी कुछ असुविधा रहती थी, जिसे दूर करने के लिये उपरोक्त हाउसिंग सोसायटी में ५८ मकान बनाए गये हैं। प्रत्येक मकान का निर्माण कार्य ५०० चौरस फीट में किया गया है, जिसमें दो कमरे, रसोई घर, शौचालय (फ्लश का) स्नानगृह तथा आगे बरामदा भी है। नल तथा बिजली की सुविधा चौबीसों घंटे की है। सोसायटी को साठ प्रतिशत सरकारी 'लोन' २० वर्ष की मिली है। प्रारंभ में अब तक की किश्तों सहित ७४०० रुपये भरना पड़ते हैं, फिर प्रतिमास ६० भरना होते हैं, जिसमें मासिक किश्त तथा सोसायटी का खर्च भी शामिल है। सभी मकान दिये जा चुके हैं परंतु जिन सज्जनों को उपरोक्त सोसायटी में मकान लेने की इच्छा हो, वे हमें निम्न पते पर सूचित करें। क्योंकि जिन मुमुक्षुओं ने सोसायटी में मकान लिये हैं उनमें से कभी किसी को निजी कारणों से मकान छोड़ने की इच्छा हुई तो हम आपको सूचित करेंगे और मकान आपके नाम ट्रान्सफर करा देंगे।

मंत्री
कहाननगर को-आ० हाउसिंग सोसायटी
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विशेष:—

उपरोक्त सोसायटी में साधन-सामग्री युक्त दो मकान अतिथिगृह के रूप में रखे गये हैं। जिनमें बिस्तर सहित सुंदर पलंग, टेबल-कुर्सियाँ, रसोई के बर्तनों सहित सुंदर रसोई घर, डाईनिंग टेबल, तथा पंखों आदि की व्यवस्था है। किराया ५/- पाँच रुपया प्रतिदिन लिया जाता है। आने से पूर्व उपरोक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

मार्च : १९७१ ☆ फाल्गुन : वीर नि० सं० २४९७, वर्ष २६वाँ ☆ अंक : ११

आत्मा का ज्ञानस्वभाव

आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, वह केवल जानने का ही काम करता है। शब्द को, रूप को या किसी को भी जानने के लिये ज्ञान एक ही है, ज्ञान में कोई अंतर नहीं हो जाता। आत्मा का ज्ञानस्वभाव स्वयमेव है, वह किसी के निमित्त से नहीं है। आत्मा का जो त्रैकालिक ज्ञानस्वभाव है, वह अपने आप ही विशेषरूप कार्य करता है। आत्मा इन्द्रिय से जानता ही नहीं, वह अपने ज्ञान की विशेष अवस्था से ही जानता है। सामान्यज्ञान स्वयं परिणमन करके विशेषरूप होता है, वह जानने का कार्य करता है। यह मानना अधर्म है कि ज्ञान दूसरे के अवलंबन से जानता है। ज्ञान स्वावलंबन से जानता है। इसप्रकार की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता धर्म है।

'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत हैं'

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के कपाट खुल जाते हैं

[समयसार नाटक के प्रवचनों में से]

* माघ कृष्णा छठ को समयसार पर १६वीं बार प्रवचन पूर्ण हुए; अब प्रवचन में यह समयसार-नाटक प्रारंभ हो रहा है।

* पंडित राजमलजी ने जो समयसार कलश टीका की रचना की है, वह अत्यंत आध्यात्मरस युक्त है। उसको पढ़कर पंडित बनारसीदासजी ने यह समयसार-नाटक बनाया है, इसमें भी अध्यात्म के गहन भावों को प्रगट किया है। इस समयसार नाटक का आज मंगल प्रारंभ होता है।

* अहा, निज स्वरूप का अपार परम रस जिसमें भरा है, जो परम आनंदमय है—ऐसे समयसाररूप शुद्ध आत्मा को यह समयसार बतलाता है। इस समयसारशास्त्र, तथा इसके वाच्यरूप ऐसा शुद्ध आत्मा, उसको नमस्कार हो।

* पंडित बनारसीदासजी आत्मा के रसिक थे; गृहस्थ होते हुए भी आत्मा के रसिक थे; वे महान आध्यात्मिक रसिक कवि थे। पहले तो शृंगाररस में मग्न थे, फिर बाद में शृंगाररस से विमुख होकर चैतन्य के अध्यात्मरस का अनुभव किया तथा उस अध्यात्मरस को कविता में घोला है।

पंडित बनारसीदासजी मंगलाचरण में पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति करते हैं कि—अहो, भगवान की वीतरागी मुद्रा को देखने से भव्य जीवों के नेत्र में हर्षाश्रु आ जाते हैं। जिन भगवान का आत्मा परम वीतराग शांतरसरूप हो गया है, जिनके शरीर की मुद्रा में भी अत्यंत निर्विकार शांतरस झलकता है—ऐसे अरिहंत भगवान को देखने से भव्य जीव के अंतर में आनंद प्रगट होता है, आनंद का झरना झरता है। अंतर में अपने चैतन्यप्रभु को तथा बाह्य में वीतराग अरिहंत परमात्मा को जीव ने कभी यथार्थरूप से नहीं देखा; और अब देखते ही भव्य जीव का हृदय-

सरोवर प्रसन्नता से भर जाता है। अहा! परमात्मा को देखने से किसको आनंद नहीं होगा?

प्रभो! आप तो सुवर्ण के पर्वत समान हो। सुवर्ण का पर्वत अर्थात् मेरु पर्वत; चाहे जैसे वायु के झकोरों से भी मेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, उसीप्रकार हे प्रभु! दुष्ट कमठ की घोर उपसर्ग वायु से आप किंचित् भी चलायमान नहीं होने से मेरु पर्वत के समान अडोल हो; तीव्र आंधी के उपसर्ग से भी आप चलायमान नहीं हुए। धवल-उज्ज्वल-पवित्र ऐसे सिद्धपद में, अर्थात् आत्मा के शुद्धस्वरूप में ही आप रमण करनेवाले हो; परमपद ऐसा जो शुद्ध आत्मस्वभाव, उसमें आप रमण करनेवाले हो।

देखो, ऐसे भगवान को पहिचानकर जिसने नमस्कार किया, वह जीव राग में रमणता करना स्वीकार नहीं करता अर्थात् राग से लाभ नहीं मानता। जीव जिससे लाभ माने, उसमें रमण करता है। राग से लाभ माननेवाला राग में ही रमणता करता है, किंतु राग की रमणता से मुक्त होकर स्वभाव की रमणता नहीं कर सकता।

यहाँ तो कहते हैं कि अहो! भगवान तो आत्मा के परम शुद्धस्वरूप में रमण करनेवाले हैं; अर्थात् हे जीव! तू भी शुद्ध आत्मा का रमण करनेवाला बनकर परभावों की रमणता का त्याग कर।—ऐसे वस्तुस्वरूप लक्ष में ले तो ही स्वभाव में रमण करनेवाले भगवान की सच्ची स्तुति हो सकेगी।

हे जिनेश्वर! भव्य जीवोंरूपी जो सच्चे कमल हैं, उनको प्रफुल्लित करने के लिये आप सूर्य समान हो। आपको देखते ही भव्य जीवों का हृदय आनंद से खिल जाता है; अंतर में आपको देखते ही (अर्थात् आपके समान अपने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को देखने से) भव्य जीवों के श्रद्धा-ज्ञानादि गुण आनंद सहित विकसित हो जाते हैं। जहाँ सहस्र किरणों से जगमगाता सूर्य उदित होता है, वहाँ सहस्र पंखड़ियोंवाले उत्तम कमल स्वत: ही विकसित हो जाते हैं; सूर्य उदय हो, तब विकसित होने का उनका स्वभाव है। उसीप्रकार जगत में जब तीर्थंकररूपी केवलज्ञानसूर्य का उदय होता है, वहाँ अनेक भव्य जीवोंरूपी कमल सम्यग्दर्शनादि प्राप्त करके अनंत गुणों से विकसित हो जाते हैं। श्री पद्मनंदीस्वामी कहते हैं कि—अहो जिनेन्द्रदेव! इन चर्मचक्षुओं से देखने पर भी हमको ऐसा अपार हर्ष होता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, तो फिर अंतर के अतीन्द्रिय ज्ञानचक्षु के द्वारा आपको देखने से-अनुभव करने से जिस परम आनंद का अनुभव होता होगा, उसकी तो क्या बात!!

इसप्रकार पर की ओर के विकल्प का त्याग करके स्व की ओर झुकने की बात भी साथ में ही बतला दी है। केवलज्ञान के अनंत किरणों से झलकते हुए चैतन्यसूर्य समान भगवान को देखने से एवं उनकी वाणी को समझने से भव्य जीवरूपी कमल विकसित होकर खिल जाते हैं।—सम्यक्त्वादि से आनंदित होकर उनकी निर्मल पर्याय विकसित हो जाती है—ऐसे भावसहित पार्श्वनाथ प्रभु को नमस्कार करके मंगलाचरण किया है।

हे पारस-जिनेन्द्र! जगत में लोहे को सुवर्ण बनानेवाला पारस प्रसिद्ध है; किंतु आप तो आत्मा को परमात्मा बनानेवाले पारस हैं। आपके द्वारा बतलाये हुए आत्मा का स्पर्श होते ही-अनुभव में आते ही आत्मा स्वयं परमात्मा हो जाता है। अहो! अंतर का स्पर्श करता हुआ मानो तेजस्वी सूर्य उदित हुआ हो। बनारसीदासजी कहते हैं कि अहो प्रभो! आपके जन्मधाम बनारस के प्रभाव से हमने हमारा आत्मस्वरूप देखा है—मानो सूर्य की ज्योति प्रगट हुई हो, ऐसे स्पष्ट स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष ज्ञान में अतीन्द्रिय अनुभव रस का स्वाद आया है। अपनी अनुभवदशा स्वयं को बराबर ज्ञात होती है, अनुभव में आत्मरस का साक्षात् स्वाद स्वयं को आता है।

अरिहंत भगवान के बाद सिद्ध भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं कि मोक्षपद को प्राप्त हुए सिद्ध भगवंतों के असंख्यात प्रदेश अतीन्द्रिय सुख से भरे हुए हैं, इसलिये वह परम रस धाम है; असंख्य प्रदेशी चैतन्यधाम अपूर्व सुखरस से भरा हुआ है।—सिद्ध भगवान केवल पूर्ण आनंदरस के ही धाम हैं। अहो, आत्मा में से ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद प्रगट हुआ है, उनका सुख, वह उत्कृष्ट सुख है। जगत में वह सर्वश्रेष्ठ हैं। एवं लोक के मस्तक के ऊपर उनका निवास है, इसलिये वह जगत के शिरोमणि हैं, ऐसे सिद्धभगवान को सदा जयवंत कहकर अपने हृदय में उनका आदर किया, यह मंगल है।

अरिहंत तथा सिद्ध भगवान की स्तुति के बाद साधु मुनिराज की स्तुति करते हुए कहते हैं कि अहो! वीतराग मार्गी साधुजन तो अंतर के अनुभव द्वारा ज्ञान के प्रकाशक हैं। सम्यग्ज्ञान का प्रकाश उनको झलक रहा है। वह सहज सुख के सागर हैं। आत्मा के ही अनुभव से उत्पन्न हुए सहज सुख के समुद्र हैं तथा वीतरागी रस से भरे हुए हैं। मुनि तो सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र इत्यादि उत्तम गुणोंरूपी रत्नों से भरे हुए रत्नाकर हैं; उनकी पहिचान करके यहाँ नमस्कार किया गया है। देखो, पंचमहाव्रत के राग से तथा दिगंबर शरीर से मुनि की पहिचान नहीं करायी किंतु वीतरागी गुणरत्नों की खान कहकर उनकी पहिचान करवाई है। गुणों के द्वारा पहिचान

करना ही सच्ची पहिचान है। अहो! ऐसे मुनिवरों के मुखकमल से तो मोक्षमार्ग का वीतराग अमृत झरता है।

देखो, शास्त्र रचना के मंगल अवसर पर पंच परमेष्ठी भगवंतों को स्मरण कर-करके आमंत्रित करते हैं। जिसप्रकार संसार में लग्न-विवाह के शुभ अवसर पर सगे-संबंधी एवं मित्रजनों को आमंत्रित किया जाता है; इसीप्रकार यहाँ चैतन्य की साधना के अवसर पर साधक अपने स्नेहीजनों को बुलाता है। साधक के सगे-संबंधी तो पंचपरमेष्ठी हैं तथा सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा हैं; उनका स्मरण करके मंगल में नमस्कार करते हैं।

अहो, मुनिजन अन्य की शरणरूप पराश्रय की वृत्ति को छोड़ देते हैं, मरण के भय का त्याग कर देते हैं। ध्रुव-चैतन्य का आश्रय किया, वहाँ मरण का भय कैसा? इन्द्रियोंरूपी साधना से पीछे हटकर वीतराग चारित्रमार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। अरे! विकल्प की इन्द्रियों की शरण उनको कैसी? चैतन्य की अनुभूति में किसी अन्य का अवलंबन नहीं है, ऐसे मार्ग में मृत्यु का भय कैसा? मेरा मरण होता ही नहीं है। इसप्रकार नि:शंकता से निर्भयरूप होकर मुनि आत्मा की साधना करते हैं। इन्द्रियातीत होकर आत्मा की वीतरागी शांति का अनुभव करनेवाले ऐसे मुनिवरों द्वारा धर्म की शोभा है। मुनिजन वीतराग धर्म के भूषणस्वरूप हैं। धर्म की शोभा में वृद्धि करनेवाले हैं; भ्रम का खंडन करनेवाले हैं। वीतराग धर्म का मंडन करते हुए भ्रम का खंडन करनेवाले हैं। यथार्थ धर्म का उपदेश देनेवाले हैं अर्थात् धर्म की शोभा में वृद्धि करनेवाले हैं एवं मिथ्यात्व का नाश करनेवाले हैं। कर्मों के साथ अत्यंत शांत होकर युद्ध करते हैं, अर्थात् वीतरागभाव के द्वारा कर्मों का नाश करते हैं। युद्ध और फिर शांति! तो कहते हैं कि हाँ! मुनिजन परम शांतभाव द्वारा ही कर्मों के समक्ष युद्ध करके उनका नाश करते हैं।—ऐसे जो मुनिवर पृथ्वीलोक में विराजमान हैं, उनको पहिचानकर बनारसीदासजी ने अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार किया है। अहो! जगत के शिरोमणि ऐसे मुनि भगवंत तो जगत की शोभा हैं, वह वंदनीय हैं। ऐसे मुनिराज की पहिचान तथा उनका दर्शन वह महान मंगल है।

वाह, देखो तो सही! पंडितजी ने अद्‌भुत काव्य-शक्ति को अध्यात्मरस में किसप्रकार समाविष्ट किया है! उन्होंने प्रथम अज्ञानदशा में शृंगाररस की रचना की; किंतु ज्ञान होने के बाद पश्चाताप पूर्वक शृंगाररस की पुस्तक को पानी में डुबा दिया और उससे विपरीत चैतन्यरस का मंथन कर-करके समयसार-नाटक की ऐसी सुंदर रचना की। इसके मंगलाचरण में अरिहंत-

सिद्ध तथा साधु की स्तुति की तथा अब सम्यग्दृष्टि की अद्‌भुत शांतदशा को देखकर उनको भी वंदन करते हैं।

सम्यग्दृष्टि की अंतरदशा भी अलौकिक है। आत्मा के वीतरागी शांतरस का अनुभव करते हुए सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षमार्ग में आनंद करते हैं; आनंद की क्रीड़ा करते हुए केवली प्रभु के मार्ग में चले जाते हैं, तथा शिवपंथ की साधना कर रहे हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि को भी मोक्षमार्गी कहा है। जिसप्रकार अग्नि की चिंगारी राख से ढंकी हुई होती है, उसीप्रकार चंडाल इत्यादि के देहरूपी राख से ढकी हुई अंदर चैतन्य की चिंगारी के समान सम्यग्दृष्टि आत्मा अलौकिक शांतरस के द्वारा मोक्ष की साधना कर रहा है। देखो, अविरत सम्यग्दृष्टि-गृहस्थ को भी मोक्षमार्ग में क्रीड़ा करनेवाला कहा है। समंतभद्रस्वामी ने रत्नकरंड-श्रावकाचार में भी ऐसा ही कहा है कि सम्यग्दृष्टि-निर्मोही गृहस्थ तो मोक्षमार्ग में होने से प्रशंसनीय है, किंतु सम्यग्दर्शन से रहित मिथ्यादृष्टि जीव मुनि हो जाये तो भी मोक्षमार्ग में नहीं, प्रशंसनीय नहीं है।

सम्यग्दृष्टि जीव जिनेश्वरदेव का लघुनंदन है, छोटा पुत्र है; वह भी सर्वज्ञ का उत्तराधिकारी है। मुनिवर तो सर्वज्ञ के ज्येष्ठ पुत्र हैं, अविरत सम्यग्दृष्टि, वह सर्वज्ञ का लघु पुत्र है, सर्वज्ञ के मार्ग का अनुसरण करनेवाला वह भी अल्पकाल में केवलज्ञान का उत्तराधिकारी होनेवाला है, इसलिये वह जिनेश्वरदेव का लघुनंदन है... उसको भी यहाँ वंदन किया गया है।

'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत हैं'—यह लेखमाला आत्मधर्म में इस अंक से प्रारंभ हो रही है, तथा पूरे वर्ष चलती रहेगी, तथा समयसार नाटक के प्रवचनों में से भावभीना गंभीर मंथन इसमें आता रहेगा जो कि जिज्ञासुजनों को अत्यंत रुचिकर होगा। —संपादक

हे जीव! अज्ञान से क्रोधादि कषायवश तू जन्म-मरण के दुःख अनादि से भोग रहा है, अब यदि तू भवभ्रमण के दुःख से भयभीत हो तो चैतन्य की भावना कर। शुद्धात्मतत्त्व की भावना ही कषायों को रोकने का उपाय है। हे जीव! प्रतिकूलता में आत्मा को याद करने से तेरे सारे समाधान हो जायेंगे; आत्मा आनंद का समुद्र है, उसमें जहाँ उपयोग जोड़ा, वहाँ दुःख कैसा? साधक को जगत में कुछ प्रतिकूलता है ही नहीं। हे जीव! किसी ने तेरा दोष ग्रहण किया तो उसमें तुझको क्या नुकसान हुआ? तू शांतचित्त रहकर आत्म-आराधना में तत्पर रह।

नमस्कार हो.... ज्ञानचेतनावंत मुनि भगवंतों को

[अहमदाबाद के बाद मगसिर कृष्णा १३-१४ के दिन पूज्य श्री कानजीस्वामी हिम्मतनगर पधारे थे। महावीरनगर-सोसायटी में सुंदर जिनमंदिर एवं स्वाध्यायमंदिर है। दो दिवस के प्रवचन तथा चर्चाओं में गुजरात के अनेक जिज्ञासुओं ने उत्साहपूर्वक भाग लिया था। प्रवचन में मोक्ष के कारणरूप ज्ञानचेतना कैसी होती है; एवं इस ज्ञानचेतना के धारक दिगंबर मुनि भगवंतों की अलौकिक दशा कैसी होती है, उसे समझाते हुए उसकी महिमा का वर्णन किया था।]

आत्मा स्वतंत्र, शरीर से भिन्न, चैतन्यवस्तु है; वह जाननेवाला है। जाननेवाले ने स्वयं अपने को नहीं पहिचाना, वह अज्ञान है, संसार है। जाननेवाला स्वभाव ज्ञानचेतनामय है। राग-द्वेष को जानने में ज्ञान को एकाग्र किया, वह अज्ञानी की कर्मचेतना है; एवं हर्ष-शोकरूप कर्मफल के वेदन में ज्ञान को एकाग्र किया, वह अज्ञानी की कर्मफलचेतना है; किंतु रागादि से भिन्न ऐसी ज्ञानचेतना को तो अज्ञानी पहिचानता भी नहीं है।

जाननेवाले ने स्वयं अपने को नहीं पहिचाना, वह अज्ञानचेतना है। स्वयं को भूलकर अन्य को अपना मान लिया;—ऐसी अज्ञानचेतनासहित जो कुछ भी व्रत-तप-शास्त्रज्ञान-देवपूजा इत्यादि शुभभाव करने में आते हैं, वह संसार का ही हेतु है, वह मोक्ष का हेतु नहीं हो सकता। ज्ञानी को कहीं राग मोक्ष का कारण नहीं है, उसको भी राग से भिन्न जो ज्ञानचेतना है, वही मोक्ष का कारण है।

— ऐसा ज्ञान तो बहुत अल्प जीवों में होता है!

— सच्ची बात है; किंतु अल्प जीवों में एक अपने को भी सम्मिलित कर लेना है।

प्रश्न:—आप जानते हैं, वह बात सच्ची है, किंतु आप मुनियों को नहीं मानते हो—ऐसा लोग कहते हैं?

उत्तर:—अरे भाई! प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही सर्व मुनियों को नमस्कार करते हैं। 'णमो लोए सव्वसाहूणं'—ऐसा कहकर उनको नमस्कार किया जाता है। अहो, मुनिदशा तो अलौकिक परमेष्ठीपद है। मुनि, वह तो भगवान हैं, उनको कौन नहीं मानता? किंतु मुनिदशा जिसको प्राप्त हो, उसको मुनि माना जाये न? मुनिदशा क्या है, उसका ज्ञान अनेक लोगों को नहीं है। जिनके मुनिदशा नहीं हो, श्रद्धा भी सच्ची नहीं हो, मुनि के योग्य आचरण भी नहीं हों तो ऐसे को मुनि मान लेने से इससे विपरीत सच्चे मुनिभगवंतों का अनादर होता है। हम दिगंबर जैन मुनि को परम आदर से मानते हैं,—किंतु मुनि होना चाहिये न? जिसको अंतर में आत्मा का भान हो, एवं अंदर अधिक लीनतारूपी चारित्रदशा में आत्मा के परम आनंदरस का पान करते हों, सर्वथा दिगंबरदशा हो—ऐसे मुनि, वह तो भगवान हैं। वर्तमान में ऐसे मुनि के दर्शन यहाँ दुर्लभ हैं। यह वीतराग मार्ग है, इसमें भूल नहीं चलती। स्वयं के हित के लिये सच्चा निर्णय करने की यह बात है।

जिसको भवों के दुःख से मुक्त होकर आत्मा के मोक्षसुख का अनुभव करना हो, उसके लिये यह बात है। मिथ्यात्वरूपी जो महान रोग है, उससे किसप्रकार मुक्त हो, उसका यह उपाय बतलाया जा रहा है। जिसने रागादि परभावों में एकता मानकर उनसे भिन्न ज्ञानचेतना को नहीं पहिचाना, उसको सम्यग्दर्शन भी नहीं, उन्हें मुनिदशा कहाँ से होगी? भाई! एक बार तू परभावों से भिन्न तेरी ज्ञानचेतनावंत वस्तु को अनुभव में ले, तो तुझे सम्यग्दर्शन प्राप्त होकर तेरे जन्म-मरण का अंत आ जायेगा। ऐसी ज्ञानचेतना का अनुभव गृहस्थ को भी चौथे गुणस्थान में होता है। आठ वर्ष की बालिका भी ऐसा अनुभव कर सकती है। चाहे जितने शुभभाव करे तो भी ऐसे अनुभवरूप ज्ञानचेतना के बिना कभी धर्म नहीं हो सकता।

प्रश्न:—शुभराग से धर्म नहीं तो फिर सभी शुभराग छोड़ देना चाहिये?

उत्तर:—सभी शुभराग त्याग करने लायक हैं, ऐसी प्रथम श्रद्धा तो करो—ऐसी श्रद्धा होने के बाद भी पूजनादि का शुभराग भूमिकानुसार होता है किंतु धर्मी जीव उस राग को ज्ञानचेतना से भिन्न समझता है अर्थात् ज्ञानचेतना में से तो उसने सभी राग का त्याग कर दिया है। ज्ञानचेतना के साथ राग का एक अंश भी धर्मी जीव सम्मिलित नहीं करता है। (अर्थात् किसी राग का न स्वामी बनता है, न हितकर मानता है।)

देखो भाई! राग होता है, वह बात अलग है, किंतु ज्ञानचेतना में राग नहीं है। आत्मा के भूतार्थस्वभाव का अनुभव करनेवाली जो ज्ञानचेतना है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, उसे परमार्थ धर्म कहा है, वही मोक्ष का हेतु है। उसके अतिरिक्त जो व्यवहार का शुभराग है, उसको लौकिकजन धर्म मानते हैं किंतु वह कहीं परमार्थ से धर्म नहीं है, वह मोक्ष के कारणरूप धर्म नहीं, वह तो स्वर्ग के कारणरूप अर्थात् संसार का कारण है। इस ही को अज्ञानी परमार्थ जानकर अनुभव करता है, किंतु ज्ञानचेतनारूप परमार्थ धर्म को नहीं पहिचानता।

मुनिवर तो ऐसी ज्ञानचेतनारूप परमार्थ धर्म के साधक हैं, उसे पहिचाने तभी मुनि को वास्तव में माना कहा जाता है। अज्ञानी व्रतादि के शुभराग को ही देखता है अर्थात् मुनि भी ऐसा ही राग करते हैं—ऐसा समझता है, किंतु अंदर में (छिलके से भिन्न तंदुल के समान) राग से भिन्न जो स्वच्छ ज्ञानचेतना मुनि को वर्त रही है, वही मोक्ष का सच्चा कारण है, उसको अज्ञानी नहीं पहिचानता है; इसलिये वास्तव में वह मुनि को नहीं पहिचानता है। मुनि का सच्चा स्वरूप पहिचाने तो मोक्षमार्ग की पहिचान होकर स्वयं को भी ज्ञानचेतनारूप मोक्षमार्ग प्रगट हो जाते।

ऐसी ज्ञानचेतना ही धर्म है। शुभराग, वह धर्म नहीं किंतु कर्म है; धर्म उसको कहा जाता है कि जिसके फल में आत्मा का सुख प्राप्त हो; शुभराग के फल में तो पुण्यकर्म का बंध होता है एवं उससे संसार के भोग प्राप्त होते हैं, उस ओर के झुकाव में दुःख है, संसार है। भाई! तुझे भगवान होना है तो मोक्ष के कारणरूप ज्ञानचेतना का अनुभव कर।

प्रश्नः—ऐसा अनुभव तथा सम्यग्दर्शन करने लायक है, यह बात सत्य है, किंतु वह नहीं हो वहाँ तक क्या करना?

उत्तरः—वहाँ तक उस ही के लक्ष से उसका ही उद्यम करना चाहिये; अंतर में बारंबार उसका विचार करके सच्चा निर्णय करना चाहिये। सच्चा निर्णय करे तो अनुभव हुए बिना नहीं रह सकता। राग होता है, यह बात अलग है किंतु सभी राग से रहित ज्ञानस्वभाव ही मैं हूँ—ऐसा लक्ष में लेना चाहिये। ऐसे स्वभाव को लक्ष में लेकर उसका अभ्यास करने से उसके रस में वृद्धि होने से उपयोग उसमें लीन होता हुआ विकल्प से पार अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद सहित सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन के बाद मुनिपना होता है, उनकी तो अत्यंत निर्मोही वीतरागदशा है। भीषण सर्दी में भी शरीर के ऊपर वस्त्र डालने की उनको वृत्ति उत्पन्न नहीं

होती है, अंदर चैतन्य के शांतरस में बैठकर अचल हो गये हैं। ऐसे वीतराग दिगंबर मुनिराज ज्ञानचेतना के द्वारा मोक्ष की साधना कर रहे हैं, वह महा पूजनीय-वंदनीय हैं, पंचपरमेष्ठी भगवान में जिनका स्थान है।.....नमस्कार हो..... ज्ञानचेतनावंत मोक्षमार्गी मुनिराज को!

प्रश्नः—लोग पूछते हैं कि-आप व्यवहार को मानते हैं ?

उत्तरः—स्वामीजी कहते हैं कि हाँ; व्यवहार जैसा है, वैसा जानना सत्य है। व्यवहार को व्यवहार के समान मानकर जैसा है, वैसा स्वीकार करते हैं, किंतु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शनादि निश्चयधर्म होना नहीं मानते हैं।

प्रश्नः—व्यवहार को असत्य कहते हो न ?

उत्तरः—व्यवहार परमार्थ का वास्तव में कारण नहीं है; वह कारण न होने पर भी उसको कारण कहना असत्य है। व्यवहार सत्य कारण न होने पर भी व्यवहार को कारण कहना, वह उपचार है; इसलिये सत्य नहीं है।

राग को राग समान मानना असत्य नहीं है; उसीप्रकार देव-गुरु इत्यादि निमित्तों को निमित्त समान मानना, वह कहीं असत्य नहीं है; राग, राग के समान सत्य ही है; निमित्त-निमित्त के समान ही सत्य है; किंतु उसके द्वारा धर्म होना कहना व्यवहार-उपचार है। अतः वह परमार्थ नहीं है। इस अपेक्षा से उपचाररूप व्यवहार को असत्य कहने में आता है। राग तथा निमित्त मोक्ष का वास्तविक कारण न होते हुए भी व्यवहारनय उसमें कारणपने का उपचार करके उसको कारण कहता है, तथापि सच्चा कारण तो निश्चयस्वभाव के आश्रय से है, इसलिये निश्चय को सत्य कहा गया है।

द्रव्य-पर्याय का भेद करके, त्रिकाली द्रव्य को आत्मा कहना, सो निश्चय, तथा पर्याय को आत्मा कहना, सो व्यवहार; पर्याय को पर्यायरूप जानना निश्चय है, काल्पनिक नहीं है।

भगवान पारसनाथ

[लेखांक : ४ गतांक से आगे]

हमारे चरित्रनायक भगवान पारसनाथ का जीव पूर्व के दसवें भव में मरुभूति था, बाद में हाथी के भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त करके मरकर स्वर्ग में गया; वहाँ चयकर अग्निवेग मुनि हुआ एवं कमठ का जीव अजगर हुआ जो कि अग्निवेग मुनि को निगल गया; फिर स्वर्ग में गया, वहाँ से चयकर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ। मुनि होकर ध्यानमग्न थे, वहाँ कमठ के जीव शिकारी भील ने उनको बाण से छेद दिया; मुनि समाधिमरण करके ग्रैवेयक में अहमिंद्र हुए। इसके बाद क्या होता है ? उसका वर्णन पढ़िये।

[७] पारसनाथ का जीव ग्रैवेयक में अहमिंद्र तथा कमठ का जीव सातवीं नरक में

ग्रैवेयक में उत्पन्न होनेवाले उस अहमिन्द्र का आयुष्य २७ सागरोपम के असंख्य वर्ष का था। इधर सातवें नरक में उत्पन्न होनेवाले कमठ के जीवन का भी आयुष्य २७ सागरोपम का था। दानों अपने-अपने स्थानों से निकलकर मनुष्य लोक में साथ में ही उत्पन्न होंगे।

देवलोक के १६वें स्वर्ग के ऊपर जो नव ग्रैवेयक हैं, उनके मध्य के ग्रैवेयक में रत्न के दिव्य शयनागार में अत्यंत तेजस्वी शरीर सहित वह देव उत्पन्न हुआ। उत्पन्न हुए एक घंटा भी नहीं हुआ होगा कि वह तो एकदम यौवनावस्था को प्राप्त हो गये। देवलोक के आश्चर्यकारी वैभव को देखकर विचारमग्न हो गये, उनको इसी समय अवधिज्ञान प्रगट हुआ; अपने पूर्वभव को भी उन्होंने जान लिया, इसलिये धर्म की अत्यंत महिमा जागृत हुई कि अहो ! वह मुनिदशा धन्य थी। वह चारित्रवृक्ष तो मोक्षफल को देनेवाला है—किंतु मेरी वीतरागी-चारित्रदशा पूर्ण नहीं हुई, एवं किंचित् राग शेष रह जाने से इस देवलोक में अवतार लेना पड़ा है। यहाँ भी जैनधर्म की उपासना ही मेरा कर्तव्य है, ऐसा विचारकर वहाँ देवलोक के जिनालय में विराजमान शाश्वत् रत्नमय जिनप्रतिमा की अत्यंत भक्तिपूर्वक पूजा की। देवलोक में कल्पवृक्षों से पूजन की सामग्री प्राप्त होती थी। उस देवलोक की ऋद्धि अलौकिक थी। वहाँ

असंख्य सम्यग्दृष्टि देव थे, उनमें कितने ही देव तो दूसरे ही भव में तीर्थंकर होनेवाले थे, कितने ही दूसरे भव में मोक्ष जानेवाले थे! ऐसे धर्मातमा साधर्मी-देवों के साथ आनंदपूर्वक असंख्य वर्ष तक धर्मचर्चा होती रही। वह देव ऐसे निराकुल थे कि अपने देवविमान को त्याग करके अन्य कहीं भी नहीं जाते थे। अपने विमान में रहते हुए तीर्थंकर तथा केवली भगवंतों को वंदन-नमस्कार करते थे, मुनिजनों का गुणगान करते थे तथा मुनिपने की भावना का चिंतवन करते थे। अपने देवलोक से किंचित् ऊँचाई के ऊपर विराजमान सिद्धभगवंतों का स्मरण करते हुए आत्मा के शुद्धस्वरूप का चिंतन करते थे। उनका शरीर स्फटिकमणि के समान तेजस्वी तथा श्वेत था एवं मल-मूत्र तथा रोग की उपाधि से रहित थे। सत्ताबीस हजार वर्ष के पश्चात् उनको भूख लगती थी, जिसका शमन मन में ही अमृत का चिंतवन करने से हो जाया करता था। देवलोक का दिव्य शरीर, दिव्य सामग्री इनसे भी अपना आत्मा भिन्न, इनमें कहीं भी सुख नहीं है, सुख वह तो आत्मा का अनुभव है—ऐसा वह धर्मात्मा जानते थे।—ऐसे आत्मज्ञान सहित देवलोक के दिव्य वैभव के मध्य वह २७ सागरोपम तक रहे।

सात भवों से संबंध रखनेवाले कमठ के जीव ने सातवें नरक में २६ सागरोपम तक अपार दु:ख की वेदना सहन की। भील के भव में जब उसने अपने बाण से छेदकर मुनिराज को मार डाला तब थोड़े समय के बाद उस भील को भी किसी ने मार डाला; क्रूरभाव के कारण रौद्रपरिणामों से मरकर के सातवीं नरक में जाकर उत्पन्न हुआ; उत्पन्न होते ही मस्तक के बल से भाले के समान सिर नीचे और पाँव ऊँचे करके जमीन पर गिरा, वहाँ तीव्र वेदना के कारण पाँच सौ योजन ऊँचा उछलकर फिर गिरा एवं उछला; इसप्रकार बारंबार उछलने और गिरने के कारण उसका शरीर आटे के समान बिखर गया एवं अत्यंत दु:ख को प्राप्त हुआ। अत्यंत भयभीत होकर चारों तरफ वह मूढ़ के समान देखने लगा कि अरे, यह क्या है? मैं कहाँ आकर गिरा? यहाँ तो चारों ओर दु:ख का समुद्र उछल रहा है। अरे, मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? किसकी शरण ग्रहण करूँ? अरे रे! पूर्व के महापाप से मैं इस नरक में आ गिरा? यहाँ की दुर्गंध तो सहन नहीं होती, सारा शरीर अति शीत से जमकर शून्य होता जा रहा है। इस नरक के कुएँ में से कब मुक्त होऊँगा। इसप्रकार अत्यंत दु:खी होकर विलाप-रुदन करता है।—किंतु वहाँ उसका रुदन कौन सुननेवाला है? कौन उसकी दया करे? इससे विपरीत अन्य नारकी जीव क्रूर प्रहारों से उसको मारते हैं? भूखे-प्यासे उस जीव को असंख्य वर्ष तक खाने के लिये अन्न

तथा पीने के लिये पानी नहीं मिलता है। दु:ख से घिरे हुए उस जीव को कुछ भी भान नहीं होता है, कहीं भी चैन नहीं पड़ता है। धर्म का सेवन तो किया नहीं, धर्मात्मा की विराधना करके केवल पाप का ही सेवन किया था, उसको सुख कहाँ से होगा! जो निर्दयतापूर्वक जीवों की हिंसा करता है, माँस खाता है, ऐसे पापी जीव नरक में भयंकर दु:खों को भोगते हैं; एक खण भी वहाँ सुख नहीं, हिंसादि में सुख माननेवाले जीव राई जितने इन्द्रिय-सुखों के लिये मेरु के समान अनंत दु:खों को निमंत्रण देते हैं। नरक में पड़ा हुआ वह जीव विभंग ज्ञान से पूर्व के पापों को याद करता हुआ पश्चाताप करता है कि अरे रे, पूर्व में क्रोध करते हुए पीछे फिरकर देखा नहीं, इससे यह हाल हुआ है! पूर्व में संतों के उपदेश को लक्ष में लिया नहीं, इसलिये मैं महान दु:ख में आ पड़ा। धन्य है इस धर्म को जो ऐसे भयंकर पापों से तथा अज्ञान से मुक्त करता है। जीव अकेला पाप करता है तथा अकेला ही दु:ख भोगता है; वर्तमान में तेरा कोई नहीं है। इसीप्रकार धर्म में भी अकेला ही धर्म की साधना करता है तथा अकेला ही अंदर के सुख को भोगता है।—इसप्रकार कभी अशुभ विचार कभी शुभ विचारों में समय को व्यतीत करते हुए असंख्य वर्ष तक सातवीं नरक के महान दु:खों को भोगा।

शास्त्रकार कहते हैं कि अरे, ऐसे क्रोधादि पापों को दु:खदायक समझकर इनका त्याग करो; तथा हे भव्य जीवो! परम आनन्ददायक ऐसे जैनधर्म की तुम भक्ति से सेवा करो।

(८) आनंदकुमार तथा सिंह

देवलोक में से निकलकर मरुभूति का जीव (अर्थात् पार्श्वप्रभु का जीव) तो अयोध्यानगरी में आनंदकुमार के रूप में अवतरित हुआ; तथा कमठ का जीव नरक में से निकलकर सिंह हुआ।

हमारा भरतक्षेत्र इस जम्बूद्वीप के दक्षिण भाग में है; भरतक्षेत्र में अयोध्यानगरी शाश्वत है, इसके मूलस्थान में स्वस्तिक है, इस नगरी में तीर्थंकर जन्म लेते हैं, इसलिये यह महान तीर्थ है। ऋषभदेव आदि तीर्थंकर भगवंत अयोध्या में अवतरित हुए। उत्तम अयोध्यानगरी अनेक जिनालयों में शोभायमान थी, उनके ऊपर सुंदर धर्मध्वज लहराते थे। ऋषभदेव भगवान के इक्ष्वाकुवंश में अनेक वर्षों के बाद अयोध्या में वज्रबाहु नामक राजा हुए; इनके प्रभावती रानी की कुक्षि से आनंदकुमार का जन्म हुआ। आनंदकुमार स्वयं अपने आत्मा के आनंद को

जाननेवाला था एवं अन्य जीवों को भी आनंद प्रदान करता था। वह गुणवान, रूपवान तथा बलवान था; उसकी बुद्धि धर्म में स्थिर थी। वह महा मांडलिक राजा होने से; आठ हजार राजा उसके अधीनस्थ थे। ऐसा महान मांडलिक राजा होते हुए भी धर्म को एक क्षण भी नहीं भूलता था; धर्मात्माओं का वह बहुमान एवं विद्वानों का सम्मान करता था। अयोध्या की प्रजा उसके राज्य में अति सुखी थी।

फाल्गुन मास में बसंतऋतु का आगमन हुआ, बाग-बगीचे सुंदर पुष्पों से खिल उठे; धर्मात्माओं के अंतर के बगीचे भी श्रद्धा-ज्ञान-आनंदरूपी पुष्पों से खिल उठे। आनंद महाराजा राज्यसभा में बैठे हैं; एवं धर्मचर्चा से सभी को आनंदित कर रहे हैं। इतने में प्रधान ने आकर कहा कि हे महाराज अभी नंदीश्वर पूजा के दिन हैं, इसलिये आठ दिन (फाल्गुन सुदी ८ से १५) तक जिनमंदिर में भगवान की पूजा का महान अष्टाह्निका महोत्सव प्रारंभ किया गया है; इस उत्सव में पूजन करने के लिये आप भी पधारो।

प्रधान की बात सुनकर के राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ—अहो, वीतराग जिनदेव की पूजा का ऐसा अवसर महा भाग्य से प्राप्त होता है। राज्यभर में धामधूम से विशाल उत्सव करो, भगवान की पूजा रचाओ, दान दो, धर्मचर्चा करो, जिनगुणों का चिंतवन करो, जैनधर्म की अत्यंत प्रभावना करो।

जिनमंदिर में आठ दिन तक धामधूम से महान उत्सव चला; ध्वजा-पताका तथा दीपकों से मंदिर को सजाया गया, मंगल वाद्य बजने लगे। आनंद राजा स्वयं भक्ति से पूजा में आते थे; हजारों-लाखों नगरजन भी उत्सव देखने तथा पूजन करने आते थे; एवं प्रभु की पूजा करके पापों का नाश करते थे।

मंगल-उत्सव चलता था, उस समय विपुलमति नाम के एक मुनिराज भी इस उत्सव को देखने के लिये जिनमंदिर में आये। वाह! एक तो भगवान की पूजा का महान उत्सव, और फिर मुनिराज का पधारना—इससे चारों तरफ अत्यंत हर्ष छा गया। राजा तथा प्रजा ने अत्यंत भक्ति से जिनराज के दर्शन किये एवं मुनिराज से धर्मोपदेश देने की विनती की।

वीतरागी मुनिराज ने कहा—हे भव्य जीवो! यह आत्मा स्वयं ज्ञान तथा सुखस्वरूप है, इसको तुम पहिचानो! संपूर्ण जगत में भ्रमण करके देखा किंतु आत्मा के अतिरिक्त हमको अन्य

कहीं भी सुख दिखलाई नहीं दिया है। आत्मा का सुख आत्मा में ही है; बाहर खोजन से प्राप्त होनेवाला नहीं है। आत्मा की पहिचान द्वारा ही आत्मा का सुख प्राप्त होता है। राग के द्वारा यह सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता। जिनशासन में अरिहंत भगवान ने ऐसा कहा है कि पूजा-व्रतादि शुभराग के द्वारा जीव को पुण्य का बंध होता है; एवं मोह से रहित जो वीतरागभाव है, उसके द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है।

राग से रहित सर्वज्ञदेव, परिग्रह से रहित शुद्धोपयोगी साधु वे निर्ग्रंथ गुरु तथा शुद्धात्मा का स्वरूप समझाकर वीतरागता का उपदेश देनेवाले शास्त्र, ऐसे देव-गुरु-शास्त्र जगत में पूजनीय हैं—उनकी श्रद्धा तथा पहिचान करने से आत्महित होता है।

मुनिराज ने फिर कहा कि—नंदीश्वर द्वीप में पावन शाश्वत जिनमंदिर हैं, जिनमें कुल ५६१६ वीतरागी जिनप्रतिमा विराजमान हैं। यह जिनप्रतिमाएँ आत्मा के शुद्धस्वरूप का प्रतिबिम्ब है। जिसप्रकार काँच में देखने से अपना मुख दिखाई देता है इसीप्रकार वीतरागी जिनबिम्ब के दर्शन द्वारा आत्मा का शुद्धस्वरूप अरिहंत के समान है, वह लक्ष में आता है; आत्मा का शुद्धस्वरूप लक्ष में आने से मोहकर्म का नाश हो जाता है।

—श्री मुनिराज का उपदेश श्रवण करके सभी अति प्रसन्न हुए।

जिनदर्शन की प्रभावना तथा जिनपूजा की महिमा प्रसिद्ध करने के लिये आनंदराजा ने मुनिराज से पुनः निवेदन किया कि—हे नाथ! यह रत्न की, सुवर्ण की तथा पाषाण की जिनप्रतिमा तो अचेतन है, तो इनके दर्शन-पूजन करनेवाले को पुण्यफल की प्राप्ति किसप्रकार होती है? इसको विस्तारपूर्वक समझाने की कृपा करें।

मुनिराज ने कहा—हे भव्य जनों, सुनो! ईश्वर कहीं इस जीव को कर्म का फल देता नहीं है, किंतु जीव स्वयं जैसे शुभ अथवा अशुभभाव करता है, वैसा फल स्वयं उसको प्राप्त होता है। एक ही प्रतिमा को देखकर, जो पूजा इत्यादि का शुभभाव करता है, उसको पुण्य का फल प्राप्त होता है, तथा उसी प्रतिमा को देखकर जो अनादर का अशुभभाव करता है, उसको पाप का फल प्राप्त होता है; तथा वीतरागी जिनप्रतिमा को देखकर जो जीव अपने शुद्धस्वरूप का चिंतवन करता है, उसको उसमें वह निमित्त होती है। प्रतिमा में जिनकी स्थापना है, वह अरिहंत परमात्मा शुद्ध ज्ञानचेतनामय वीतरागी आत्मा है; ऐसे आत्मा की पहिचान करते समय

अपने आत्मा के शुद्धस्वरूप की पहिचान भी हो जाती है, क्योंकि जैसे अरिहंत भगवान हैं, वैसा ही यह आत्मा भी है। इसप्रकार अरिहंत की पहिचान करते समय आत्मा की भी पहिचान होकर सम्यग्दर्शन होता है।

नंदीश्वर के मंदिरों में रत्नों की शाश्वत प्रतिमाएँ देखकर अनेक देव आश्चर्य से चैतन्य की महिमा में उतरकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। जिसप्रकार आत्मा का शुद्धस्वभाव शाश्वत अनादि का है, इसीप्रकार इसके प्रतिबिम्बरूप वीतराग प्रतिमा भी शाश्वत अनादि की है। पाँच सौ धनुष (अर्थात् एक हजार मीटर के बराबर) ऊँची वह रत्नों की मूर्ति ऐसी आश्चर्यकारी हैं कि मानों साक्षात् तीर्थंकर भगवान ही बैठे हों।—मानों अभी इनके मुख से दिव्यध्वनि निकलेगी। वीतरागता का परम तेज उनकी मुद्रा पर झलक रहा है। इसको देखते ही आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव स्मरण को आता है। अहा! चैतन्य के अनंतगुण मानो मूर्त होकर झलक रहे हों, ऐसी अद्भुत यह रत्नप्रतिमा झलकती है। वह भले ही अचेतन है, किंतु चेतन के गुणों के स्मरण में निमित्त है।

वस्त्र-शस्त्र तथा अलंकारों से रहित, राग के चिह्नों से रहित ऐसी वीतरागी प्रतिमा तो शुद्ध आत्मा के दर्पण समान है। जिसप्रकार दर्पण में अपना मुँह दिखलाई देता है, इसीप्रकार जिनप्रतिमारूप वीतराग दर्पण में अपने वीतरागी रूप का स्मरण हो आता है। वीतरागस्वरूप के चिंतवन से सम्यग्दर्शनादि होते हैं। वीतराग प्रतिमा के दर्शन-पूजन के शुभराग से उत्तम पुण्य का बंध होता है। इसप्रकार वीतराग जिनबिम्ब के दर्शन को सम्यक्त्व तथा पुण्य का कारण कहा है; यह प्रतिमा कुछ करवाती नहीं है; पुण्य-पाप तथा सम्यग्दर्शनादि धर्म यह तो जीव के अपने भावों के अनुसार होते हैं। मूक जिनप्रतिमा ऐसा उपदेश देती है कि संकल्प-विकल्पों का त्याग करके तुम तुम्हारे स्वरूप में स्थिर हो जाओ... हे चेतन! तू जिनप्रतिमा हो जा। जिस स्वरूप से प्रभु का ध्यान करोगे, उसी स्वरूप तुम हो जाओगे। जिसप्रकार चिंतामणि के चिंतन द्वारा इष्ट फल की प्राप्ति होती है, उसीप्रकार जिनप्रतिमा के समान शुद्ध आत्मा का चिंतवन करने से इष्ट फल की प्राप्ति होती है।

आनंद राजा सहित हजारों श्रावकजन अति उल्लास से विपुलमति मुनिराज का उपदेश श्रवण कर रहे थे। जिसप्रकार मंत्रित औषधि अचेतन होने पर भी विष को उतारने में निमित्त

होती है, उसीप्रकार वीतरागभावरूप मंत्रवाली जिनप्रतिमा अचेतन होते हुए भी जीव का मिथ्यात्वादि विष उतारने में निमित्त होती है। जिसप्रकार राजमुद्रा को मस्तक झुकाते हैं, उसीप्रकार प्रतिमा में भगवान की स्थापना होने के बाद जिनमुद्रा को जिनवर के समान समझकर उसका बहुमान करते हैं, जिनगुणों को स्मरण करके उसकी भावना करते हैं। जो अज्ञानी जीव जिनप्रतिमा को देखकर जिनेश्वर का स्मरण नहीं करते एवं इससे विपरीत उनकी निंदा करते हैं, उनको तो जिनगुणों का प्रेम ही नहीं है। पिता तथा पत्नी का चित्र तो प्रेम से, वात्सल्य से देखता है और वीतराग भगवान की प्रतिमा देखकर वीतराग के प्रति प्रेम तथा बहुमान जागृत नहीं होता तो ऐसे जीव को शास्त्रकार अधर्म कहते हैं; उसको जिनदेव के मार्ग के प्रति भक्ति नहीं है, वह तो संसारसमुद्र के मध्य विषय-कषायरूप मगर के मुख में पड़ा हुआ है। प्रतिदिन जिनेश्वरदेव के दर्शन करके जिनभावना का चिंतवन करना प्रत्येक श्रावक का कर्तव्य है।

मुनिराज के उपदेश में जिनदर्शन की महिमा को श्रवण करके सभी जीव अति प्रसन्न हुए, एवं अंतर में अरिहंतदेव के गुणों का तथा आत्मा के शुद्धस्वरूप का चिंतवन करने लगे....

(क्रमशः)

धर्मात्मा की भावना

धर्मात्मा भावना करता है कि—मेरे स्वभाव में राग-द्वेष नहीं है। मित्र के ऊपर राग अथवा शत्रु के ऊपर द्वेष करना हमारे हृदय में नहीं है। वास्तव में तो इस संसार में कोई किसी का शत्रु या मित्र है ही नहीं। यह स्वेच्छाचारी लोक हमें भला कहे या बुरा, उससे हमें क्या? कोई भी बैरी हमारे आत्मा को हानि पहुँचाने में समर्थ नहीं है, एवं कोई भक्त मेरे आत्मा को लाभ नहीं करते। भक्तजन यदि भक्ति करते हैं तो अपने शुभराग के कारण, और यदि बैरी निंदा करते हैं तो वे अपने द्वेषपरिणाम को लेकर करते हैं। मैं तो दोनों को जाननेवाला हूँ, मेरे ज्ञान में तो दोनों ज्ञेयरूप हैं। ऐसे अपने ज्ञानस्वभाव की भावना के बल से ज्ञानी संतों के राग-द्वेषरहित क्षमाभाव होता है।

अमृतचंद्रसूरि अनेकांत का अमृत पिलाते हैं—

[१४ बोलों के द्वारा ज्ञानमात्र आत्मा के अनेकांत स्वरूप की पहिचान]

स्वामीजी बारंबार कहते हैं—अहो! यह अनेकांत तो जैनदर्शन का प्राण है, यह अनेकांत ज्ञानस्वरूप आत्मा को प्रसिद्ध करके सच्चा जीवन जिलाता है। अनेकांत के स्वरूप को समझाकर आचार्यदेव ने वीतरागी अमृत का पान कराया है।

लीजिये... अमृतरस पीजिये... स्वानुभव कीजिये।

—००—

समयसार की ४१५ गाथा में आचार्यदेव ने अनेक प्रकार से स्पष्टता करके ज्ञानस्वरूप आत्मा को बतलाया है; रागादि समस्त परभावों से भिन्न ज्ञानमात्र ही आत्मा है, ऐसे आत्मा के अनुभव से ही आत्मा परम आनंदरूप परिणमित होता है—ऐसा समझाकर, ज्ञानमात्र आत्मा का ही अनुभव करने के लिये कहा है।

अब, आत्मा को 'ज्ञानमात्र' कहा, उसमें अन्य धर्म किसप्रकार हैं? 'ज्ञानमात्र' भाव को अनेकांतपना किसप्रकार है? यह बात आचार्यदेव इस परिशिष्ट में स्पष्ट करते हैं।

आत्मा ज्ञानमात्र है—ऐसा कहने से कहीं एकांत नहीं हो जाता, किंतु ज्ञानमात्र आत्मा में स्वयमेव अनेकांत प्रकाशित होता है। 'ज्ञानमात्र कहने से ज्ञान से विरुद्ध ऐसे अन्य भावों का आत्मा में निषेध हो जाता है, किंतु ज्ञान के साथ अन्य धर्मों का कहीं निषेध नहीं हो जाता। ज्ञानस्वरूप आत्मा में तत्पना-अतत्पना, एकपना-अनेकपना, सत्पना-असत्पना तथा नित्यपना-अनित्यपना इत्यादि अनेक धर्म हैं, इसलिये उसको अनेकांतपना है। अनेकांत के उपदेश द्वारा सर्वज्ञभगवान ने ज्ञानस्वभावी आत्मा को प्रसिद्ध किया है। अनेकांत किसप्रकार आत्मा को प्रसिद्ध करता है, वह बात यहाँ १४ बोलों के द्वारा आचार्यदेव समझाते हैं:—

(१) ज्ञानमात्र आत्मा को स्वरूप से तत्पना है; (२) पररूप से अतत्पना है।

(३) ज्ञानमात्र आत्मा को द्रव्य से एकपना है; (४) पर्याय से अनेकपना है।

(५) ज्ञानमात्र भाव को स्वद्रव्य से सत्पना है; (६) परद्रव्यों से असत्पना है।

(७) ज्ञानमात्र भाव को स्वक्षेत्र से अस्तिपना है; (८) परक्षेत्र से नास्तिपना है।

(९) ज्ञानमात्र भाव को स्वकाल से सत्पना है; (१०) परकाल से असत्पना है।

(११) ज्ञानमात्र आत्मा को स्वभाव से सत्पना है; (१२) परभाव से असत्पना है।

(१३) ज्ञानमात्र भाव को ज्ञानसामान्यरूप से नित्यपना है; (१४) ज्ञान विशेषरूप से अनित्यपना है।

—इसप्रकार अनेकांत से आत्मा का स्वरूप सही प्रकार से समझ में आता है। ऐसे १४ बोल प्रत्येक आत्मा में एकसाथ वर्त रहे हैं। परभावों से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ—ऐसा समझने से अनेकांत के १४ बोल एक साथ इसमें समाविष्ट हो जाते हैं। 'ज्ञानमय मैं हूँ' इसप्रकार स्वसन्मुख होकर अनुभव करने से, 'ज्ञान से विरुद्ध अन्य वस्तु मैं नहीं' इसप्रकार पर की नास्ति भी इसमें आ ही जाती है अर्थात् ज्ञान को अनेकांतपना स्वयमेव अपने स्वभाव से ही प्रकाशित होता है। ऐसा अनेकांत आत्मा को जीवित रखनेवाला है।

मैं मेरे ज्ञानस्वरूप से तत्रूप हूँ तथा पर के साथ तद्रूप नहीं हूँ—इसप्रकार अनेकांत के द्वारा आत्मा का उद्धार होता है, अर्थात् अनेकांत के द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय करने से ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होता है, विपरीत भावरूप परिणमित नहीं होता है; इसप्रकार ज्ञान जीवन से आत्मा जीवित रहता है। अज्ञानदशा में जीव पररूप अपने को मानता है, तब मिथ्याभाव के कारण उसका भावमरण होता है। ज्ञान का ज्ञानजीवन (ज्ञान-परिणमन) रहता नहीं था; अनेकांत उस भावमरण से सुरक्षा करता हुआ ज्ञानजीवन से आत्मा को जीवित रखता है। इसप्रकार अनेकांत, यह जीवन है; अनेकांत, वह अमृत है; अनेकांत जैनशासन का सार है, उसके द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव होता है। ऐसे अनेकांत के १४ बोलों के विस्तार द्वारा आचार्यदेव ज्ञानस्वरूप आत्मा को प्रसिद्ध करते हैं; इसलिये अनेकांत के १४ बोल द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय करने से उसका अनुभव होता है। आत्मा का अनुभव ही उसका नाम ही आत्मा की प्रसिद्धि है। आत्मा को ऐसी प्रसिद्धि के लिये ही यहाँ अनेकांत के १४ बोलों का विस्तार करते हैं।

[१-२] ज्ञानस्वरूप आत्मा को स्वरूप से तत्पना; तथा पर से अतत्पना।

आत्मा को अपने ज्ञानस्वरूप के साथ तन्मयपना है; इसलिये अपने स्वरूप से उसको तत्पना है; परज्ञेयों के साथ इसको तन्मयपना नहीं है, इसलिये पररूप से उसको अतत्पना है; इसप्रकार तत्पना तथा अतत्पना ऐसे दोनों धर्मोंरूप अनेकांतपना ज्ञानस्वरूप आत्मा में स्वयमेव प्रकाशित हो रहा है। भाई! तेरा आत्मा ऐसे स्वरूप से है, इसका निर्णय तो कर।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, पदार्थ उसका ज्ञेय है। ज्ञेयों को जाने, ऐसा ज्ञान का स्वाभाविक सामर्थ्य है; ज्ञान को अपने निजरस से ही पदार्थों के साथ ज्ञाता-ज्ञेयपने का संबंध है। अपने ज्ञानरस में तन्मयपना भूलकर अज्ञानी अपने ज्ञानतत्त्व को परज्ञेयरूप मान लेता है। ज्ञान को पर के साथ तन्मयपना मानता है अर्थात् ज्ञानतत्त्व का वह नाश करता है; ज्ञेयों से भिन्न अपने ज्ञान को वह भूल जाता है। सर्वज्ञदेव द्वारा कहा हुआ अनेकांतमय वस्तुस्वरूप उसको इसप्रकार प्रसिद्ध करता है कि हे जीव! तू तो ज्ञान है, तेरा तत्पना तो निजरूप में है; तेरा तो ज्ञानरूप परिणमन है, ज्ञेयों में कहीं तू चला नहीं गया है। अतः तेरे ज्ञान में ही तेरी तन्मयता को पहिचान! ज्ञेयों से भिन्न ऐसे ज्ञान को ही स्वरूप से अनुभव में ले। इसप्रकार स्वरूप से तत्पना बतलाकर अनेकांत इस जीव का उद्धार करता है, अज्ञान नष्ट करके ज्ञानी बनता है।

परज्ञेय ज्ञान में मालूम होते हैं, वहाँ अज्ञानी ऐसा मानता है कि ज्ञेयरूप जो कुछ भी जानने में आ रहा है, वह सब मैं ही हूँ, पर के कारण ही मेरे ज्ञान का अस्तित्व है, पर के कारण मुझको ज्ञान हो रहा है—इसप्रकार ज्ञान से भिन्न ऐसे जो ज्ञेय हैं, उनको भी अपना मानकर अपने स्वाधीन अस्तित्व को नष्ट कर देता है, ज्ञान का परज्ञेयों से अतत्पना है—अर्थात् भिन्नपना है, उसको वह पहिचानता नहीं है; तब अनेकांत उसको पर से अतत्पना बतलाकर भिन्न ज्ञान को प्रसिद्ध करता है कि हे भाई! तू तो विश्व से भिन्न ज्ञान है; जाननेवाला तू है, किंतु जो परज्ञेय जानने में आते हैं, वह तू नहीं है; ज्ञान तथा ज्ञेयों की अत्यंत भिन्नता है।

भाई, तू स्वयं ज्ञान है; तेरा तत्त्व तेरे ज्ञान में है। तेरा ज्ञान जिनमें नहीं है, ऐसे जो भिन्न परज्ञेय, वह तेरी अपेक्षा तो अज्ञान-तत्त्व हैं, क्योंकि तेरे ज्ञानरूप वह परिणमित नहीं होते हैं। तेरे ज्ञान परिणमन का त्याग करके जिसमें तेरे ज्ञान का अतत्पना है, ऐसे अज्ञानतत्त्व को अपने आत्मारूप मानता है, किंतु इसमें तो तेरा नाश होता है; इसलिये तू तेरे ज्ञान को विश्व से भिन्न

देखता हुआ अपने ज्ञान में ही तू तन्मय रह। इसप्रकार अनेकांत ही आत्मा को ज्ञानमात्र भावरूप से जीवित रखता है।

परपदार्थ के द्वारा मेरा कल्याण होगा, परपदार्थ द्वारा ज्ञान प्राप्त होगा, इसप्रकार अन्य के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति जो मानता है, वह ज्ञान को अपनेरूप तत् नहीं मानता हुआ पर के साथ तन्मय मानता है। पर से तो ज्ञान अतत्रूप है, उसमें से ज्ञान नहीं आता है, फिर भी उससे ज्ञान होना मानता है, वह स्व-पर की मिलावट करके शुद्धज्ञान के साथ धोखा करता है, ज्ञानपरिणमन का नाश करके अज्ञानरूप परिणमित होता है किंतु अनेकांत उसको विश्व से भिन्नता बतलाकर अपने ज्ञान में ही एकाग्रता करवाता है।—इसप्रकार उसको जीवित रखता है, ज्ञानरूप परिणमन करवाता है।

[३-४] ज्ञानमात्र भाव का द्रव्य अपेक्षा से एकपना, पर्याय अपेक्षा से अनेकपना

ज्ञानमात्र भाव में एकपना तथा अनेकपना भी है, इसलिये उसको अनेकांतपना प्रकाशित है।—किसप्रकार? कि ज्ञान में अनेक ज्ञेयाकार जानने में आता है, इससे कहीं ज्ञान खंड-खंड नहीं हो जाता; अनेक ज्ञेयों को जाननेरूप ज्ञान परिणमित होता है तो भी द्रव्यपने ज्ञान एक है। अनेक ज्ञेयों को जाननेरूप ज्ञान का परिणमन अर्थात् ज्ञानपर्याय में ऐसे अनेकप्रकार दिखलाई दे, फिर भी अखंड एक ज्ञानमय द्रव्य के अवलंबन से ही पर्यायें होती हैं, अर्थात् द्रव्य से ज्ञानभाव का एकपना है। द्रव्य से एकपना रखकर अनेक पर्यायोंरूप ज्ञान परिणमित होता है।

ज्ञानपर्याय में अनेक ज्ञेयों को जानने का सामर्थ्य है; ज्ञान का ही ऐसा सामर्थ्य है, इसलिये ज्ञान में अनेक ज्ञेय जानने में आते हैं, वहाँ अज्ञानी अनेक प्रकार के उन ज्ञानाकारों को निकाल देना चाहता है एवं एकरूप ज्ञान को ही चाहता है—यह उसका भ्रम है; वह अपनी पर्याय को निकाल देना चाहता है। अनेकांतपना सच्चा स्वरूप उसको समझाते हैं कि भाई! पर्याय अपेक्षा से तेरे ज्ञान को अनेकपना है; ज्ञान में अनेक ज्ञेयाकार जानने में आते हैं, वह तो ज्ञान की स्वच्छता का सामर्थ्य है। ज्ञान में अनेक आकार जानने में आते हैं, इससे कहीं उन ज्ञानाकारों में राग-द्वेष नहीं आ जाते हैं। जगत के अनंतज्ञेय ज्ञान में एक साथ जानने में आवें, यह तो तेरी ज्ञानपर्याय का सामर्थ्य है। अनेक ज्ञेयपदार्थ ज्ञान में जानने में आते हुए भी ज्ञान उन परज्ञेयों से भिन्न है। ज्ञान की पर्याय में अनेकता ज्ञान के अपने सामर्थ्य से है।

द्रव्यरूप से आत्मा सदा एक चैतन्यमय ज्ञान-आकार है; पर्याय अपेक्षा से अनेक ज्ञेय उसमें ज्ञेयरूप से जानने में आवें, ऐसा अनेक आकारपना है, यह भी ज्ञान के ही परिणमन का सामर्थ्य है। इसप्रकार ज्ञान में एकपना तथा अनेकपना दोनों एक साथ प्रकाशित करता हुआ अनेकांत सच्चा स्वरूप बतलाता है, अर्थात् सम्यग्ज्ञान से आत्मा को जीवित रखता है।

ज्ञान में जड़-चेतन, राग-द्वेष आदि अनेक ज्ञेय एक साथ जानने में आते हैं, इसलिये ज्ञान कहीं खंडित नहीं हो जाता है, मलिन नहीं हो जाता है; एकसाथ अनेक ज्ञेयों को जाननेरूप परिणमित होता है, यह ज्ञान का सामर्थ्य है, ज्ञान की स्वच्छता है, ऐसे ज्ञान को प्रतीति में लेकर धर्मी जीव अपने ज्ञानरूप से परिणमित होता हुआ अनेक ज्ञेयों को जानते हुए भी ज्ञान की एकता का नाश होना नहीं मानता है। द्रव्यरूप से ज्ञानमात्र आकार से एक रहना, पर्याय में अनेक ज्ञानाकाररूप से परिणमित होना—ऐसा ज्ञान का अनेकांत स्वभाव है।

[अब अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्तिपना तथा पर के द्रव्य-क्षेत्र-भाव से नास्तिपना —इसप्रकार सत्-असत् के आठ बोल कहते हैं:—]

[५-६] ज्ञानमात्र भाव को स्वद्रव्य से सत्पना, परद्रव्य से असत्पना है

ज्ञानमात्र भाव आत्मा है, ज्ञातृद्रव्य है; परद्रव्य स्वयं परिणमन करते हुए ज्ञान में ज्ञात होते हैं। उनको जानते समय ज्ञान को उन परद्रव्यरूप ही अज्ञानी मान लेता हैं। शरीरादि क्रियायें जानने में आती हैं, वहाँ वह क्रियाएँ मैं ही हूँ, मैं ही उनको करता हूँ—इसप्रकार अज्ञानी परसत्तारूप ही अपने को मानकर स्वसत्ता को भूल जाता है अर्थात् आत्मा का नाश करता है। मेरा सत्पना, मेरा अस्तित्व तो मेरे ज्ञान में है, पर में मेरा अस्तित्व नहीं—इसप्रकार स्व से सत्पना है, तथा पर से असत्पना है, इसको अज्ञानी जानता नहीं है। अनेकांतमय वस्तुस्वरूप इसको यह बतलाता है कि हे जीव! तेरा अस्तित्व तेरे स्वद्रव्य से ही है, परद्रव्य से तेरा नास्तित्व है, ऐसी भिन्नता के भान द्वारा स्वद्रव्य के परम सत् का स्वीकार होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होता है। अनेकांत के द्वारा सच्चा निर्णय करने से ऐसे आत्मा का अनुभव होता है।

भाई! जो भी परद्रव्य का परिणमन है, उसमें तू नहीं; ज्ञानमय जो तेरा स्वद्रव्य है, उस ही मैं तू है।—इसप्रकार स्वसन्मुख होकर तेरे स्वद्रव्य को तू देख, उसमें पर का प्रवेश नहीं है।

देखो, यह अनेकांत का वीतरागी अमृत संत पिलाते हैं। यह अनेकांत का अमृत परोसते हैं।

अहो! ज्ञान का सत्पना स्वद्रव्य से है, इसलिये ज्ञान को स्वद्रव्य में खोज, पर में मत खोज। स्वद्रव्य को लक्ष में लेने से तेरे अस्तित्व में ही तुझे वीतरागी आनंद के अमृत का अनुभव होगा। परज्ञेयों से तेरा असत्पना है। शास्त्र-वाणी-इन्द्रियाँ तथा विकल्प, इनके द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति होना माननेवाला परज्ञेयों को ज्ञानरूप ही मानता है; किंतु अनेकांत उसको परद्रव्य से असत्पना बतलाकर ऐसा समझाता है कि हे भाई! परज्ञेयों में से तेरा ज्ञान आता नहीं है। ज्ञान का अस्तित्व ज्ञान में है; पर का अस्तित्व पर में है, पर में ज्ञान का नास्तित्व है।—इसप्रकार अनेकांत द्वारा तू परद्रव्य से तेरी भिन्नता को पहिचान।

भगवान की वाणी में ऐसा आया है कि 'हे जीव! तू ज्ञान है।' इसी समय वहाँ जीव को भी ऐसा ही ज्ञान हुआ। वहाँ-अज्ञानी ऐसा भ्रम उत्पन्न करता है कि वाणी के द्वारा मुझे ज्ञान हुआ! ज्ञान का सत्पना अपने में है, वाणी में ज्ञान का सत्पना नहीं है, ऐसे अनेकांत को वह अज्ञानी पहिचानता नहीं है। अनेकांतस्वरूप को जो समझे अर्थात् ज्ञान का स्व से सत्पना तथा पर से असत्पना समझे तो पर के द्वारा ज्ञान होना स्वीकार नहीं करे; अर्थात् स्वद्रव्याश्रित ज्ञानपरिणमन होने से परम आनंदरूप अमृत उसको प्रगट होता है।

देखो, इस अनेकांत में तो जैनधर्म का मूल रहस्य है; विश्व के वस्तुस्वरूप को यह अनेकांत प्रकाशित करता है। अनेकांत तो सर्वज्ञ भगवान का अमोघ चिह्न है। भाई, तेरे ज्ञान का सत्पना तेरे से ही है, किसी अन्य के कारण (देव-गुरु-शास्त्र के कारण, इन्द्रियों के कारण विकल्पों के कारण) तेरे ज्ञान का सत्पना नहीं है। तेरे ज्ञान को अन्य कोई देता नहीं है, तेरे ज्ञान को अन्य कोई नष्ट नहीं कर सकता, स्वाधीन ज्ञानरूप से परिणमित आत्मा अनंत के अमृत को अपने अस्तित्व में अनुभव करता है।—ऐसा आनंद जीवन अनेकांत जिलाता है।

(शेष आगामी अंक में)

सुखशक्ति से जीव स्वयं सुखी है

[ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन]

धर्म अर्थात् सुख; सुख आत्मा का धर्म है। सुख को जो खोजता है, वह खोजनेवाला स्वयं ही सुख है। जिसप्रकार ज्ञान से रहित आत्मा होता नहीं है, उसीप्रकार सुख से रहित आत्मतत्त्व कभी होता नहीं है। हे भाई! तू विचार करके यह बात लक्ष में तो ले कि अनंत काल से बाहर में सुख खोज-खोज करके थक गया, फिर भी तुझे सुख का एक अंश भी क्यों नहीं प्राप्त हुआ?—सुख की वायु भी क्यों नहीं आई? जिसप्रकार हिरण मृगजल को पानी समझकर दौड़ता है; अरे हिरण! तू दौड़-दौड़ करके थक गया, फिर भी तुझे ठंडी हवा क्यों नहीं आई?—कहाँ से आयेगी? वहाँ पानी हो तो ठंडी हवा आये न? वहाँ पानी तो नहीं है किंतु धगधगती रेती है। इसीप्रकार धगधगती रेती के समान आकुलतावाले जो बाह्य विषय हैं, उनमें अज्ञानी सुख मानकर वहीं अपने उपयोग को दौड़ता है; किंतु अनंत काल व्यतीत होने पर भी उसको सुख प्राप्त नहीं हुआ;—कहाँ से प्राप्त हो? विषयों में सुख हो तो प्राप्त हो न? सुख तो आत्मा में है; उसमें देखे तो सुख का अनुभव हो।

आत्मा को ज्ञानमात्र कहने से उस ज्ञानस्वरूप में आकुलता का अभाव होने से अनाकुलतारूप सुख भी सम्मिलित है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है अर्थात् वह रागरूप अथवा आकुलतारूप नहीं है। ज्ञान में आकुलता होती नहीं है, अर्थात् ज्ञान की खदान में गहरा उतरने से उसमें सुख भी भरा है। ज्ञान के समान सुख भी आत्मा का स्वभाव है। जिसप्रकार आत्मा का ज्ञान स्वयं अपने से है, अन्य में से नहीं आता है, उसीप्रकार आत्मा का सुख भी स्वयं अपने स्वभाव से है; आत्मा में जिसप्रकार ज्ञान सत् है, उसीप्रकार सुख भी सत् है। स्वयं अपने सत् के-अस्तित्व को स्वीकार करे तो सुख का अनुभव हो। सुख स्वभाव के साथ अनंत धर्म हैं।

भाई! सुखरूप होना, वह तो तेरी स्वयं की शक्ति है। सुखगुण तथा सुखपर्याय—इसीप्रकार अनंत गुण एवं उनकी निर्मलपर्यायें, ऐसी अक्रम तथा क्रमरूप अनंतधर्मों का

समुदायरूप आत्मा है; किंतु रागादिभाव उसमें अभूतार्थ है, उनको आत्मा नहीं कहते।

आत्मा वर्तमान में सुखगुणरूप त्रिकाल है, वह सुखपर्यायरूप परिणमित होता है। तीन काल के सुख को वह ज्ञान के द्वारा एकसाथ जान तो लेता है, किंतु सुख का वेदन तो उस-उसपर्याय में वर्ते उतना ही है। भले ही प्रत्येक समय परिपूर्ण सुख वेदन करे, किंतु तीनकाल का सुख एक साथ वेदन में नहीं आ सकता। सुख पर्याय का परिणमन तो क्रमशः है, उस-उस समय की वर्तमान पर्याय के सुख का वेदन होता है। उस सुख के वेदन में राग के वेदन का अभाव है अर्थात् उसमें वह अभूतार्थ है। भगवान आत्मा को राग के द्वारा अथवा शरीर के द्वारा पहिचानना, वह असद्भूत है, उसके द्वारा आत्मा की सच्ची पहिचान नहीं होती। आत्मा के सुख द्वारा अथवा आत्मा के ज्ञान द्वारा उसकी सच्ची पहिचान होती है। माता-पिता के द्वारा, शरीर के रूप-रंग द्वारा, समवसरणादि संयोग के द्वारा भगवान के आत्मा की सच्ची पहिचान नहीं होती है, उनके केवलज्ञानादि के द्वारा ही उनकी सच्ची पहिचान होती है। आनंदस्वरूप आत्मा है, सुखस्वरूप आत्मा है—इसप्रकार उसकी सच्ची पहिचान होती है; किंतु शरीरवाला आत्मा, रागवाला आत्मा; इसप्रकार उसकी पहिचान करवाना, यह तो कलंक के समान है, अभूतार्थ है-असत्य है। तुझे सुख के भोजन करने हों, आनंद के भोज में भोजन करना हो तो अंदर भूतार्थरूप सुखस्वभाव में अपरिमित आनंद भरा है। उस ही में प्रवेश कर... अनंत आनंद इसी ही में उत्पन्न होता रहे, ऐसा तेरा चैतन्यक्षेत्र है; आनंद की खदान तेरे में ही भरी है।—अब आनंद के लिये तुझे अन्यत्र कहीं जाना नहीं है, सुख तो तेरा स्वरूप ही है; इस स्वरूप के अनुभव द्वारा सुखरूप परिणमन करना, वही धर्म है; अर्थात् सुख है।

सुख को जो खोजता है, वह खोजनेवाला ही सुख की खदान है। आत्मा अपना सुख बाहर में खोजता है यह तो, जैसे सूर्य अपना प्रकाश अन्य स्थान में खोजने जावे, इसप्रकार हुआ। जिसप्रकार सूर्य स्वयं निरालंबता से उष्णता एवं प्रकाश का पुंज है, इसीप्रकार यह निरालंबी आत्मा स्वयं स्वभाव से ही ज्ञान एवं सुख है। स्वयं सुखमय है, यह भूलकर अज्ञानी पर में से सुख प्राप्त होना मानता है। किंतु 'सुख प्राप्त करतां सुख टले छ लेश ए लक्षे लहो'—अरे! बाहर में सुख मानने से अंतर का सुखस्वभाव विस्मृत हो जाता है। हे भाई! तू विचार करके यह बात लक्ष में तो ले, कि अनंत काल से बाहर में सुख खोज-खोजकर थक गया, फिर भी तुझे सुख की एक बूँद भी क्यों प्राप्त नहीं हुई?—सुख की वायु भी क्यों नहीं

लगी ?.... जिसप्रकार हिरण मृगजल को पानी समझकर दौड़ता है; अरे हिरण! तू दौड़-दौड़कर थक जाता है, फिर भी ठंडी हवा तुझे क्यों नहीं आयी ?—कहाँ से आवेगी ? वहाँ पानी हो तो ठंडी हवा आवे ? वहाँ पानी तो है नहीं किंतु उष्णता से तप्त चमकती रेती है। इसीप्रकार उष्ण बालू की चमक के समान आकुलतावाले जो बाह्यविषय हैं, उनमें अज्ञानी सुख मानकर उपयोग को वहाँ लगाता है, किंतु अनादिकाल व्यतीत होने पर भी सुख प्राप्त नहीं हुआ—कहाँ से प्राप्त हो ? विषयों में सुख हो तो मिले न ? पर के आलंबन में तो आकुलता है; सुख का निधान तो अंतर में है, उसको लक्ष में लेने से सुख की ठंडी तरंगें आती हैं। किसी भी अन्य वस्तु के अवलंबन से रहित आत्मा स्वयं सुख है। केवल सुख ही नहीं किंतु ऐसे अनंत स्वभावों का स्वाद आत्मा के अनुभव में एकसाथ वेदन में आता है। अनेकांत के द्वारा आत्मा का स्वरूप पहिचाननेवाले धर्मात्मा को स्वानुभव में ऐसा वेदन होता है; वह मोक्षमार्ग है।

सुख से परिपूर्ण चैतन्य लक्ष्मी को लक्ष में ले

जगत के वैभव से आत्मा का वैभव भिन्न जाति का है। अरे, संसार में लक्ष्मी के लिये जीव कितने छल-कपट एवं राग-द्वेष करता है। उस ही में जीवन व्यतीत करके पाप का बंध करता है। भाई, तेरे स्वघर की चैतन्यलक्ष्मी महान है, उसकी सुरक्षा कर न! उसमें कहीं भी छल-कपट नहीं, राग-द्वेष नहीं; किसी की आवश्यकता नहीं; फिर भी वह महान आनंदरूप है। बाह्य-लक्ष्मी प्राप्त हो तो भी उसमें सुख प्राप्त नहीं होता है। यह चैतन्य-लक्ष्मी महा आनंदरूप है, ऐसा अपार वैभव आत्मा में भरा है।—उसको लक्ष में लेना सुख है।

आत्मा का अस्तित्व

[सोनगढ़ में पंचास्तिकाय के प्रवचन में से]

आत्मा का स्वभाव अर्थात् आत्मा का अस्तित्व ज्ञान से रचा हुआ है; आत्मा का अस्तित्व शरीर से अथवा राग से रचा हुआ नहीं है।

ज्ञान से आत्मा का अस्तित्व है अर्थात् ज्ञान के साथ उसकी तन्मयता है; शरीर अथवा पुण्य-पाप के साथ आत्मा की तन्मयता नहीं है, इनके बिना भी आत्मा का अस्तित्व टिका हुआ है।

ज्ञान, यह आत्मा है—ऐसा लक्ष में लेकर एकाग्र होने से आत्मा में एकाग्रता होती है, क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वभाव है। किंतु शरीर यह आत्मा, राग यह आत्मा—ऐसा लक्ष में लेने से आत्मा में एकाग्रता नहीं होती, क्योंकि वह वास्तव में आत्मा नहीं है।

ज्ञान का अस्तित्व, तथा दूसरा आत्मा का अस्तित्व, इसप्रकार दोनों का भिन्न अस्तित्व नहीं है। दोनों का एक ही अस्तित्व है, दोनों अभिन्न प्रदेशी हैं, तथा दोनों को एकभावपना है।

ज्ञान तथा आत्मा का एक भाव है, किंतु राग तथा आत्मा का एक भाव नहीं, उनका तो भिन्न भाव है; उसीप्रकार शरीर और आत्मा का एक भाव नहीं है, इनका भिन्न भाव है। अहो! ऐसा भेदज्ञान करके ज्ञान के द्वारा जाननेवाले को पहचानना—उसमें महान आनंद है। राग तथा राग से रहित आत्मा महान् आनंद का धाम है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से आत्मा तथा ज्ञान का भिन्नपना नहीं है किंतु एकपना है। ऐसे ज्ञानमय अस्तित्व को पहिचानना, अर्थात् ज्ञान से किंचित् भी भिन्नता नहीं मानना चाहिये, अपने ज्ञानमय अस्तित्व में रागादि परभावों को किंचित् भी सम्मिलित नहीं करना,—ऐसा सम्यक् भेदज्ञान अर्थात् स्व में एकता तथा पर से भिन्नता का ज्ञान यही मोक्ष का उपाय है।

जो ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उससे मान्यता एकरूपपना होने पर भी विशेष अपेक्षा से ज्ञान के अनेक प्रकार होने में काई विरोध नहीं है। मति-श्रुत इत्यादि ज्ञान के भेद हैं, वे कहीं सामान्य ज्ञान की एकता को भंग नहीं करते किंतु उसका अभिनंदन करते हैं—यह बात समयसार गाथा २०४ में कही है। सर्वज्ञदेव ने साक्षात् देखा हुआ ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसको अज्ञानी ने कभी देखा नहीं है। एकपना तथा अनेकपना दोनों का साथ रहना, यह तो वस्तुस्वभाव है।

अनंत गुणों का आधार एक द्रव्य है, इसमें एकाग्र होने से अनंत गुणों का विकास हो जाता है; किंतु प्रत्येक गुण का भेद करके लक्ष में लेने जावे तो विकल्प ही उत्पन्न होते हैं, एक भी गुण का विकास नहीं होता। इसलिये अनंत गुण-पर्याय के आधाररूप एक द्रव्य को अनुभव में लेने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इत्यादि गुण प्रगट होते हैं।

मोक्ष में जाने का शकुन

अहो, यह 'समयसार' तो मोक्ष में जाने के लिये शकुन है। जिसको यह समयसार प्राप्त हुआ, उसको मोक्ष में जाने के लिये उत्तम शकुन प्राप्त हुआ है। इसके भावों को समझनेवाला आनंदपूर्वक निर्विघ्न मोक्ष में जायेगा।

यह समयसार का पक्षी, अर्थात् जिसको समयसाररूपी पंख प्राप्त हुए, अर्थात् समयसार में जैसा शुद्ध आत्मा बतलाया, वैसा लक्ष में लेकर उसका जिसने पक्ष किया, वह निरालंबी ज्ञानगगन में विहार करता है, अर्थात् ज्ञानस्वभाव का अनुभव करता है। समयसार तो शुद्ध सुवर्ण जैसा निर्मल है, सौ टंच के सुवर्ण जैसे शुद्धभाव इस समयसार में भरे हैं; ऐसे समयसार का श्रवण करने से, अर्थात् उसके वाच्यरूप शुद्धात्मा को लक्ष में लेकर भावश्रवण करने से भव्य जीवों के हृदय के द्वार खुल जाते हैं.... वह निःशंक हो जाता है कि अहो, समयसार ने तो निहाल कर दिया; हम संसार से पृथक् होकर मोक्ष के मार्ग में आ गये हैं... समयसार ने तो अशरीरी भाव बतलाये हैं... वास्तव में बहुमानपूर्वक ऐसे समयसार का श्रवण, वह मोक्ष में जाने का शकुन है।

[नाटक सुनत हिये फाटक खुलत हैं]

श्रेष्ठ गुणों से सुशोभित जीव-राजा को स्वानुभूति से पहिचाने बिना सुख प्राप्त नहीं होता।

रणासण में संवत् २०१५ में भव्य पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था, वह बिल्कुल छोटा गांव होते हुए भी, वहाँ का रमणीय तीन शिखरों से सुशोभित जिनमंदिर एक विशाल नगर के समान रणासण को सुशोभित कर रहा है। स्वागत के बाद प्रवचन में कहा कि—आत्मा का स्वभाव ज्ञान तथा आनंदरूप है; रागादि भाव, वह विभाव हैं। जीव अनादि से स्वभाव को भूलकर, विभावरूप ही अनुभव करता हुआ संसार में भ्रमण कर रहा है। इससे विपरीत राग से भिन्न ज्ञानस्वभाव को पहिचानकर; उस स्वभाव का स्मरण करना, यह अपूर्व मंगल है। स्वभाव एवं विभाव को भिन्न पहिचानकर एक क्षण भी स्वभाव की भावना का चिंतवन करे तो अल्पकाल में मोक्ष हुए बिना नहीं रहता।

राग से भिन्नता जानकर चैतन्यस्वभाव की प्रीति करके उसकी साधना करने के लिये जो जागृत हुआ, उसको अब आत्मा के रंग में भंग नहीं पड़ सकता। साधक नि:शंकपने कहता है कि प्रभो! आपके सामने हमारे आत्मस्वभाव को हमने पहिचान लिया है अर्थात् हम आपके कुल के हो गये; अब ऐसे आत्मा के अतिरिक्त किसी परभाव को हमारे हृदय में नहीं आने देंगे, यह हमारी प्रतिज्ञा है। वीतराग के कुल में हम आ गये तो अब राग का आदर हम किसप्रकार करेंगे? राग से भिन्न आत्मा के अनुभव द्वारा अंतर में स्वभाव का जो प्रेम जागृत हुआ, उस स्वभाव की पूर्णता को साधने में अब बीच में विघ्न करनेवाला नहीं है, भंग पड़नेवाला नहीं।—ऐसी दशा प्रगट हो, यह अपूर्व मंगल है।

प्रवचन में समयसार गाथा १७-१८ पर प्रवचन करते हुए राजा की सेवा के दृष्टांत से भगवान आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान-आचरण करना समझाया। भाई, मोक्ष के लिये प्रथम अंतर में जीव के यथार्थस्वरूप की पहिचानकर उसकी श्रद्धा करना चाहिये। जीव को राजा की उपाधि दी है; राजा अर्थात् श्रेष्ठ, अपने श्रेष्ठ गुणों के द्वारा जो शोभायमान है, ऐसा जीवस्वभाव स्वयं कैसा है? प्रथम इसकी पहिचान करना चाहिये। आत्मा की पहिचान किये बिना व्रतादि

शुभराग करते हुए भी जीव ने किंचित् मात्र सुख प्राप्त नहीं किया, किंतु दुःख को ही प्राप्त किया। इसका अर्थ यह हुआ कि शुभराग, वह सुख का कारण नहीं अर्थात् वह धर्म नहीं है, वह मोक्ष का कारण नहीं है। राग में तो दुःख है, मोक्ष का कारण राग से भिन्न है।

मोक्षार्थी जीव को मोक्षसुख के लिये क्या करना, उसकी यह बात है। जिसको केवल आत्मार्थ साधने के अतिरिक्त दूसरी कोई इच्छा नहीं, आत्मा के अनुभव की ही जिसको लगन है, वह जीव प्रथम तो श्रीगुरु ने जैसा आत्मा बतलाया, वैसे अपने आत्मा को पहिचानता है कि ऐसे ज्ञानस्वरूप से अनुभव में आनेवाला आत्मा ही मैं हूँ, सर्व परभावों से भिन्न एक ज्ञानमय भाव मैं हूँ—इसप्रकार आत्मा को पहिचानता है, एवं ज्ञानपूर्वक उसकी श्रद्धा करता है कि यही मैं हूँ। ऐसी श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक, उसके अनुभव में एकाग्रता, सो चारित्र है।

मेरा ज्ञानस्वरूप आत्मा, रागादि परभावों से संयुक्त नहीं किंतु भिन्न है, ऐसा धर्मी अनुभव करता है।—भिन्न होते हुए भी अज्ञानी जीव आत्मा का रागादि सहित ही अनुभव करते हैं अर्थात् अशुद्ध आत्मा का ही अनुभव करते हैं, वही संसार का मूल है। परभावों से असंयुक्त ऐसे शुद्ध आत्मा का अनुभव, यह मोक्ष का मूल है। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में भी अमृतचंद्राचार्य ने यह बात १४वीं गाथा में स्पष्ट कही है:—

एवमयं कर्मकृतैर्भावैः असमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्॥

इसप्रकार यह आत्मा कर्मकृत ऐसे रागादिभावों से तथा शरीरादि से असंयुक्त है, फिर भी अज्ञानियों को संयुक्त जैसा दिखलाई देता है—ऐसा प्रतिभास वास्तव में भव का बीज है। अरे, अपने को रागादिवाला अशुद्ध ही अनुभव करता है तो वह भव से किसप्रकार मुक्त हो सकेगा? और भेदज्ञान द्वारा राग से भिन्न शुद्धात्मा का अनुभव मोक्ष का बीज है।

परभाव से रहित शुद्धोपयोगरूप जो रत्नत्रय है, वही निरपराधपना है, एवं जो शुभराग होता है, यह तो अपराध है। धर्मी को जितना भी अशुभ तथा शुभराग होता है, वह अपराध है। सम्यग्दृष्टि को ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, किंतु उसका कारण सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव नहीं हैं, किंतु उसका कारण राग है, अर्थात् राग का वह अपराध है। जिस भाव से तीर्थंकरादि किसी भी कर्मप्रकृति का बंध हो, वह भाव अपराध है, मोक्ष का कारण नहीं है। मोक्ष के

कारणरूप जो शुद्ध रत्नत्रयभाव है, वह बंध का कारण नहीं होता। जिससे मोक्ष का कार्य हो, उससे बंध का कार्य नहीं हो सकता; इसप्रकार बंध तथा मोक्ष के कारण की भिन्न-भिन्न पहिचान करना चाहिये। उसका वर्णन पुरुषार्थसिद्धिउपाय गाथा २१८ तथा २२० आदि में किया है। उनमें तीर्थंकर प्रकृति के बंध का हेतुभूत योग-कषाय कहे हैं, एवं जिससे पुण्य का आस्रव होता है, ऐसे शुभोपयोग को अपराध कहा है। धर्मी जीव के शुभोपयोग को भी अपराध कहा है, वहाँ अन्य की तो बात ही क्या ? अज्ञानीजन इस अपराध के सेवन द्वारा मोक्ष को साधन का पुरुषार्थ करता है—वह मोक्ष को किसप्रकार साध सकेगा ? समयसार में तो राग से अत्यंत भेदज्ञान करवाकर मोक्ष का मार्ग प्रगट किया है।

अहो, समयसार तो शुद्धात्मा को बतलाकर अशरीरी होने की अपूर्व कला को बतलानेवाला शास्त्र है। अशरीरी-अतीन्द्रिय आत्मा इन्द्रियों के द्वारा नहीं पहिचाना जा सकता, वाणी के श्रवण द्वारा नहीं जाना जा सकता है, राग के द्वारा नहीं जाना जा सकता किंतु स्वभाव की ओर झुके हुए अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा ही जाना जाता है। सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनंद का प्याला धर्मी ने पी लिया है, और मुनि को तो अतीन्द्रिय आनंद का प्रचुर अनुभव होता है। इन्द्रियों की ओर के भावों द्वारा अतीन्द्रिय आनंद का ज्वार आत्मा में नहीं आ सकता। अंतर की एकाग्रता द्वारा आत्मा चैतन्यसमुद्र स्वयं स्वभाव से उल्लसित होकर अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है। ऐसे अनुभव के लिये प्रथम भगवान आत्मा को पहिचानकर निःशंक श्रद्धा करना चाहिये कि ऐसे ज्ञान की अनुभूतिस्वरूप ही मैं हूँ। राग की अनुभूति को आत्मा नहीं कहते, ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा है। जितना ज्ञानरूप से अनुभव में आता है, उतना ही मैं हूँ, ज्ञान से भिन्न कोई भी परभाव मैं नहीं हूँ।—ऐसा अनुभव करे, तब जीव को शुद्धात्मा की सिद्धि होती है, अन्य किसी भी प्रकार से शुद्धात्मा की सिद्धि होनेवाली नहीं है।

गुणिषु प्रमोदं

सम्यक्त्वादि रत्नत्रय गुणों के धारक ऐसे गुणीजनों के प्रति धर्मी को प्रमोद आता है; उस रत्नत्रय को तथा उसके आराधक गुणीजनों को देखकर उसको अंतर में प्रेम-हर्ष-उत्साह तथा बहुमान जागृत होता है, उसका वात्सल्य उछलता है। गुणीजनों के प्रति जिसको वात्सल्य जागृत न हो तो समझना चाहिये कि उस जीव को गुणों के महिमा की खबर नहीं है, उसको अपने में गुण प्रगट नहीं हुए हैं। स्वयं में जिसको गुण प्रगट हुए हों, उसको वैसे गुण दूसरे में देखकर आनंद हुए बिना नहीं रहता।

भगवती आराधना में कहते हैं कि चारित्ररहित तथा ज्ञान-दर्शन से रहित ऐसे भ्रष्ट मुनिजन लाखों-करोड़ों हों तो भी उनकी अपेक्षा सुशील ऐसे उत्तम आचार के धारक एक मुनि हों तो श्रेष्ठ हैं; क्योंकि सुशील ऐसे जो भावलिंगी मुनि के आश्रित शील अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र वृद्धि को प्राप्त होता है।

भावार्थः—सत्यार्थ धर्म का प्रवर्तन जिसके द्वारा हो, वह एक भी श्रेष्ठ हैं; परंतु जिससे सत्यार्थ धर्म नष्ट होकर विपरीत मार्ग का प्रवर्तन हो, ऐसे लाखों-करोड़ों भी श्रेष्ठ नहीं हैं।

(भगवती आराधना, गाथा ३५९)

कोई ऐसा कहता है कि सत्यार्थ संयमी तो हमारा आदर नहीं करते हैं तथा पार्श्वस्थ (भ्रष्ट) मुनि अति आदर करते हैं, प्रीति करते हैं! तो उससे कहते हैं कि हे भाई! दुर्जन द्वारा की जानेवाली पूजा-सम्मान से तो संयमीजनों के द्वारा किया जानेवाला अपमान भी श्रेष्ठ है; क्योंकि दुर्जनों का संग तो आत्मा के ज्ञान-दर्शनादि का नाश करता है, एवं संयमीजनों की संगति तो आत्मा के ज्ञान-दर्शनादिक स्वभाव को प्रगट करती है, उज्ज्वल करती है।

(भगवती आराधना, गाथा ३६०)

इसलिये श्रेष्ठ गुणों के धारक संतजनों का ही आश्रय करो—ऐसा उपदेश है।

'आत्महितकारी सत्संग की जय हो'

वीतरागी-भेदज्ञान

* आत्मा सत् वस्तु है; सत् का सत्त्व अनंत प्रकार का है। ज्ञानसत्त्व, सुखसत्त्व —इसप्रकार अनंत गुणों का सत्त्व है, अनंत गुणों का बादशाह आत्मा, यह राग का भिखारी होकर भटकता फिरे—यह कहीं उसको शोभा देता है ?

* भाई; तेरे गुण-पर्याय का सत्त्व तेरे में हैं, एवं पर के गुण-पर्याय का सत्त्व पर में है; उनका भेद होकर तुझमें नहीं आता, तुझमें से भेद पड़कर पर में नहीं जाता। वस्तु में गुण-पर्याय का भेद होता है, वह भेद उस ही में रहता है, अन्य में नहीं जाता। अभेद वस्तु में भेद कहना, यह व्यवहार है, किंतु यह भेद उस ही में रहता है। आत्मा में उसके अनंत ज्ञानादि गुणों की अपेक्षा से भेद होता है; फिर भी वस्तुरूप से आत्मा एक है। ऐसा अनेकांत स्वरूप है। आत्मा के निर्मलगुण-पर्यायरूप सत्त्व में रागादि परभावों का अभाव है।—ऐसा अस्ति-नास्तिरूप अनेकांतपना भी स्वयमेव प्रकाशित है।

* आत्मा का पर के साथ कार्य-कारणपना नहीं है, तो क्या आत्मा पर को जानता है या नहीं ? एवं आत्मा पर का ज्ञेय होता है या नहीं ?—कहते हैं कि हाँ; आत्मा पर को जानता है; किंतु इससे कहीं पर का कर्ता नहीं हो जाता है; एवं पर के ज्ञान में आत्मा प्रमेय होता है, इससे कहीं पर का कार्य नहीं बन जाता है। स्वयं प्रमाणरूप होकर पर को जाने, एवं स्वयं प्रमेयरूप होकर अन्य के जानने में आवे—ऐसा तो आत्मा का स्वभाव है, अर्थात् ज्ञाता-ज्ञेयपने का संबंध है, किंतु इससे अधिक संबंध किंचित् भी नहीं है।

* कोई ऐसा कहते हैं कि अन्य आत्मा को नहीं जाना जा सकता; तो कहते हैं कि ऐसा नहीं है; अन्य आत्मा को भी जानने की शक्ति आत्मा में है; एवं स्वयं अपने को भी प्रत्यक्ष जानता है, यह बात प्रकाशशक्ति में बतलाई गई है; एवं आत्मा पर को भी जानता है—यह बात यहाँ ली है। इसीप्रकार इस आत्मा को दूसरा आत्मा भी (जिसमें इसप्रकार का ज्ञान हो वह) जान सकता है।—ऐसा भी इसमें आया है। इन्द्रियों के द्वारा

अन्य आत्मा इस आत्मा को नहीं पहिचान सकता; किंतु अतीन्द्रिय-ज्ञान से तो आत्मा अवश्य जानने में आता है। आत्मा ऐसा नहीं है कि किसी के जानने में ही आये।

* आत्मा पर को जानता है किंतु पर का ग्रहण-त्याग नहीं करता है। आत्मा पर के ज्ञान में जाना जाता है किंतु पर में जाता नहीं है। वीतरागी भेदविज्ञान कोई अलौकिक है।

(४७ शक्तियों के प्रवचन में से वीर संवत् २४९७)

परमार्थ स्तुति

'आत्मा' और 'देह' अत्यंत भिन्न हैं। देह और देह की क्रियायें सदा अजीव ही हैं। उसमें कभी जीव को धर्म नहीं होता तथा वह जीव के धर्म का कारण भी नहीं होता जीव के सब धर्म जीव में ही हैं, जीव का कोई धर्म अजीव में नहीं है। इसलिये हे जीव! देह के संबंध को तू अपना न समझ, अपने आत्मा को निरंतर देह से भिन्न ही देख।

देह से आत्मा की भिन्नता का भान कब हो? ज्ञान को अंतर में झुकाकर जब अतीन्द्रिय चैतन्य का स्पर्श करे, तब देहादि की एकत्वबुद्धि छूटे और तब ही यथार्थ में देह से भिन्न आत्मा को जाना कहा जाये। श्वास का लेना, वचन का बोलना, ये सब क्रियायें देह के साथ संबंध रखती हैं। उनको जो अपनी मानता है, वह 'देह' को ही 'आत्मा' मानता है। अतीन्द्रिय चैतन्यवस्तु कुछ इन्द्रियज्ञान का विषय नहीं। आत्मा की क्रिया कौन सी? ज्ञानक्रिया। इस ज्ञानक्रिया द्वारा जो आत्मा को देह से भिन्न अनुभव करता है, वही सर्वज्ञ परमात्मा की परमार्थ स्तुति कर सकता है।

स्वभाव में नियतरूप वीतराग मोक्षमार्ग

[मोक्ष के लिये वीतरागचारित्र का चिंतन करना चाहिये, राग का नहीं]

शुभ अथवा अशुभरागरूप जो परचारित्र है, वह बंधन का ही कारण है, अर्थात् वह बंधमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं—ऐसा भगवान जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

— बंधमार्ग कैसे मुक्त हों ?

— तो कहते हैं कि किसी भी प्रकार सम्यग्ज्ञान-ज्योति प्रगट करके जीव को परसमय को छोड़कर स्वसमय को ग्रहण करना चाहिये। उससे कर्मबंधन से मुक्त होते हैं। सम्यग्दर्शन में भी रागरहित स्वभाव का ग्रहण है, रागरूप परसमय का त्याग है।

जीवस्वभाव ज्ञान-दर्शनमय है; उस स्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। सम्यग्दर्शन भी जीवस्वभाव में नियत है, सम्यग्ज्ञान भी जीवस्वभाव में नियत है। इसप्रकार स्वभाव में तन्मयरूप वर्तना, वह चारित्र है। वीतरागता में वर्तना, यह चारित्र है, अशुभ अथवा शुभराग में वर्तना, वह चारित्र से भ्रष्टपना है। मोक्ष के कारणरूप चारित्र शुभराग से भिन्न है। लौकिकजन शुभराग को चारित्र तथा मोक्षमार्ग मान रहे हैं, यह अनादि का भ्रम है। सम्यग्दृष्टि तथा मुनि को जो शुभराग है, वह कहीं मोक्ष के कारणरूप चारित्र नहीं है, वह आस्रव के कारणरूप परचारित्र है; अर्थात् बंधमार्ग है—मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा जिनेश्वर भगवान ने कहा है।

बंध का जो कारण है, वह मोक्ष का कारण कभी नहीं हो सकता। शुभराग को बंध का कारण कहना एवं उसको फिर मोक्ष का कारण मानना, यह बात परस्पर विरुद्ध है। उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा हो तो वह वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा समझना चाहिये।

अरे रे, मोक्ष के कारणरूप शुद्ध वीतरागचारित्र को पहिचाने बिना राग को मोक्ष का साधन मानकर अनंत काल आजतक मिथ्यात्व तथा रागादि में ही लीनतापूर्वक व्यतीत हुआ... अब तो स्वभाव में नियत वीतरागी चारित्र की निरंतर भावना करना चाहिये।

प्रभुता

- स्वामीजी कहते हैं कि:—हे जीव ! तुझमें प्रभुता भरी है ।
- प्रभुता में ऐसी किंचित् भी हीनता नहीं है कि अन्य के पास सुख मांगे ।
- प्रभुता से परिपूर्ण आत्मा जहाँ अपने स्वभावबल से जागृत हुआ, वह किसी से पराजित होनेवाला नहीं है..... अपने स्वभाव के भंडार को खोलकर वह पूर्ण ज्ञान को करती है ।
- चैतन्य की प्रभुता को पहिचानने से जीव जगत्पूज्य पदवी को प्राप्त करता है ।
- तुझे परमेश्वर के पास पहुँचना है ?..... हाँ, तो अंतर में प्रभुता भरी है, उसका स्पर्श कर । राग के स्पर्श से तू दु:खी हुआ और इससे परमात्मा से दूर हो गये; अब तू राग से पृथक् होकर परमात्मा के समीप हो जा, तेरे आत्मा की प्रभुता को तू देख, उसको अनुभव में ले । उसके अनुभव से तू स्वयं परमात्मा हो जायेगा ।
- सम्यग्दर्शन प्रदान करे, सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र प्रदान करे, तथा परम आनंद प्रदान करे, ऐसा प्रभु आत्मा स्वयं तू है.... उसको हे जीवो ! तुम पहिचानो ।
- अहा, आत्मा की वीरता कैसी अद्भुत है.... कि जिसको श्रवण करने से आत्मा में वीरता का उत्साह जागृत होता है । वाह ! प्रभुता से भरा हुआ आत्मा... उसकी वीरता की क्या बात ! राग में ऐसी वीरता नहीं है । राग से पार अंतर में चैतन्य के अनुभव में अनंत गुणों की निर्मल सामर्थ्यरूप वीरता है ।

विविध समाचार

सोनगढ़:—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। सवेरे श्री नियमसार पर एवं दोपहर को श्री नाटक समयसार पर आध्यात्मिक भाववाही प्रवचन होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रात:काल जिनमंदिर में पूजन एवं सायंकाल भक्ति का कार्यक्रम रहता है। अगले महीने अप्रैल में पूज्य स्वामीजी का मंगल विहार होगा, जिसका विस्तृत कार्यक्रम अगले अंक में दिया जायेगा।

बम्बई में रथयात्रा महोत्सव संपन्न

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्री चंद्रप्रभु दिगम्बर जिनमंदिर भूलेश्वर (बम्बई) का पंच दिवसीय (दिनांक १३-१२-७० से १७-१२-७० तक) वार्षिक समारोह एवं रथयात्रा महोत्सव सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर शास्त्र-प्रवचन हेतु माननीय पंडित श्री खेमचंदजी जेठालालजी सेठ आमंत्रित होकर पधारे थे। आपने ५ दिनों तक प्रतिदिन दो बार प्रात: प्रवचनसार की ७वीं गाथा और रात्रि को समयसार की निर्जरा अधिकार की २०६वीं गाथा पर विद्वत्तापूर्ण किंतु सरल और सुबोध शैली में प्रवचन दिए। जिनमें धर्म के स्वरूप एवं तत्त्वों के यथार्थ विवेचन को श्रोताओं ने बड़ी रुचिपूर्वक सुना। आपने प्रवचनों में एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय बात कही कि 'इस जीव ने वृत्ति आकारे ज्ञानियों की आज्ञा को अनंत बार माना किंतु उसका भवभ्रमण आजतक मिटा नहीं। यदि जीव पर में कर्तृत्वबुद्धि छोड़। इस आज्ञा के आकारे वृत्ति एक क्षण के लिये भी करे तो उसका भवभ्रमण मिटे बिना रहे नहीं।'

प्रवचन में प्रात: लगभग ५०० और रात्रि को लगभग २५०० श्रोतागण उपस्थित होते थे। अंतिम दिन एक महती सभा में श्रीमान पंडित खेमचंदजी जेठालालजी के प्रति हार्दिक आभार प्रगट किया गया।

प्रेषक—

मूलचंद पाटनी, बम्बई

गांधीनगर दिल्ली में महान धर्मप्रभावना

श्री पंडित गोविंदरामजी खडेरी निवासी समाज के आग्रह पर यहाँ पधारे, जिससे धर्म की अच्छी जागृति हुई। प्रतिदिन आपका प्रात: ५ बजे से ६ तक; ८ बजे से ९ तक एवं दोपहर को ३ से ४ एवं रात्रि को ८ से ९.३० तक क्रमश: समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, श्रावकधर्म प्रकाश तथा लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका पर प्रवचन होता था। आपकी प्रवचनशैली सरल सुबोध और प्रभावोत्पादक है। इसप्रकार २५ दिन तक आपके सत्संग से समाज को विशेष धर्मलाभ हुआ। अंतिम दिन स्थानीय समाज के द्वारा आपको हार्दिक अभिनंदन दिया गया।

—हितैषी

नूतन जिनमंदिर का शिलान्यास

दिनांक २८-२९-३०-३१ जनवरी तथा १ फरवरी सन् ७१ को पिपलानी H E L में एक विशाल जिनमंदिर तथा श्री कुंदकुंद स्वाध्यायभवन का शिलान्यास महोत्सव विशेष समारोहपूर्वक मनाया गया। शिलान्यास विधि महा मुमुक्षु मंडल के अध्यक्ष श्री नवनीतभाई चुनीलाल जवेरी के द्वारा हुई। श्री बाबुभाई, कनुभाई भी स्थानीय समाज के आग्रह पर यहाँ पधारे थे। भोपाल में श्री बाबुभाई के प्रवचन प्रतिदिन सुबह, मध्याह्न एवं रात्रि को अत्यंत सफलतापूर्वक हुए। अधिक संख्या में समाज ने धर्मलाभ लिया। श्री कनुभाई की जिनेन्द्रभक्ति भी सुंदर और माधुर्यपूर्ण थी। इस पुनीत अवसर पर आदरणीय श्री बाबुभाई के सानिध्य में लगभग १ लाख रुपये का दान भी आया। H E L में स्थित विशिष्ट सुशिक्षित नवयुवक जैनसमाज ने परम उत्साहपूर्वक सारा उत्सव मनाया, धर्म की बड़ी प्रभावना हुई।

भवदीय—
डॉ. कपूरचंद कौशल
मंत्री, मुमुक्षु मंडल, भोपाल

भोपाल में मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु-मंडल कार्यकारिणी की बैठक

तारीख १-११-७० के बाद पुन: धार्मिक कार्यों में विशेष प्रगति लाने के हेतु तारीख ३०-१-७१ को मध्यप्रदेश मुमुक्षु-मंडल के पदाधिकारियों की एक आवश्यक बैठक

प्रतिनिधियों के साथ आयोजित की गई, जिसमें पदाधिकारियों के साथ अनेक मुमुक्षु-मंडल के प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस मीटिंग में श्री धन्नालालजी ग्वालियर द्वारा प्राप्त सुझावों पर विचार करके अनेक निर्णय किये गये। श्री राजमलजी बी.काम, भोपाल द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव के बावत सर्व अनुमति से यह निर्णय हुआ कि इस धर्म कार्य में विशेष प्रगति लाने के हेतु श्री ज्ञानचंद जैन विदिशा को प्रचार-मंत्री बनाया जाये व प्रचार आफिस विदिशा रखा जाये।

अत: प्रचार संबंधी समस्त रिकार्ड श्री ज्ञानचंद जैन विदिशा प्रचार-मंत्री मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल के पास पहुँच गया है; अत: समस्त पत्र-व्यवहार निम्न पते पर करें।

अब कार्य में विशेष वास्तविक रूप से उग्रता लाने के लिये तथा इस विषय-कषाय की अग्नि से बचने के लिये जहाँ मुमुक्षु मंडल की शाखायें न हों, वहाँ शीघ्र स्थापित कर विदिशा सूचना दें। अनेक स्थानों से प्रवचन, शिक्षण शिविर की मांग आ रही है, अत: इस आत्मधर्म की विज्ञप्ति के अनुसार हम सभी मुमुक्षु मंडलों से आग्रह करते हैं कि वे अपने यहाँ आत्म-जागृति के लिये जो विद्वान अपना जितना अधिक से अधिक समय दे सकें, वे शीघ्र प्रचार विभाग विदिशा को एक पत्र भेजें।

१५ मार्च के बाद विद्वानों के जाने का प्रोग्राम विदिशा से बनेगा। अत: जहाँ के मुमुक्षु मंडल विशेष लाभ शिविर आदि द्वारा अप्रैल सन् ७१ में लेना चाहते हैं, वे शीघ्र ही विदिशा आफिस को लिखें। मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल के प्रगति के समाचार प्रतिमाह प्रकाशित होंगे, इस कारण लोकल मुमुक्षु मंडल अपने धार्मिक कार्यक्रमों की रिपोर्ट विदिशा भेजें।

हमेशा पत्र व्यवहार का पता:—

ज्ञानचंद जैन
ज्ञानानंद निवास,
किला अंदर, झांईपोर
विदिशा (म.प्र.)

डालचंद जैन
मंत्री, मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल
भोपाल
१८-२-६७

❀ ❀ ❀

मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल की प्रगति के समाचार

मध्यप्रदेश मुमुक्षु-मंडल के तत्त्वावधान में फरवरी में ४ दिन पंडित धन्नालालजी

ग्वालियरवाले राघोगढ़ में रहे। जिनके द्वारा यहाँ के मुमुक्षुओं ने काफी लाभ लिया। दिनांक २४-२-७१ से २६-२-७१ तक तीन दिन आपका शिवपुरी में कार्यक्रम रहा, जिससे समाज ने अच्छा लाभ लिया।

बीना (इटावा) में श्री सेठ नन्नेलालजी बुखारिया की ओर से सिद्धचक्र मंडल विधान दिनांक २२-२-७१ से २८-२-७१ तक शिक्षण शिविर के साथ चला, जिसके अंतिम दो दिन श्री ज्ञानचंद जैन विदिशा द्वारा विशेष प्रभावना हुई, विधान का कार्यक्रम श्री पंडित बाबुभाई अशोकनगर के सानिध्य में हुआ। इटावा में बजरिया के भी मुमुक्षुओं ने अच्छी प्रकार से भाग लिया।

म.प्र. मुमुक्षु-मंडल के द्वारा समाज में एकता, शांति, तथा मोक्षमार्ग के अनुरूप सम्यग्ज्ञान एवं सदाचार का प्रचार करने का प्रयास जारी है, इसकी प्रगति के लिये सबका सहयोग वांछनीय है।

४-३-७१ ज्ञानचंद जैन

प्रचार मंत्री, म.प्र. मुमुक्षु मंडल केन्द्र, विदिशा

सरकारी जनगणना में सहयोग

जैन समाज से अपील

भारत सरकार द्वारा १० मार्च १९७१ से भारत की जनगणना का कार्य प्रारंभ हो गया है। सरकार चाहती है कि इसमें विभिन्न धर्मों के माननेवालों की सही संख्या जानने को मिले। इसलिये धर्मों का उल्लेख करने के लिये पत्र में धर्म का १० वाँ कालम रखा गया है।

भारत में जैनियों की संख्या की सच्ची जानकारी प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि जनगणना के समय प्रत्येक जैन, धर्म के १०वें कालम में अपने को जैन लिखाये और इसप्रकार सही जानकारी हासिल करने में सरकार को योगदान दें।

आशा है समस्त जैनसमाज इस कार्य में पूरा सक्रिय योगदान देगा।

निवेदन

कस्तूरभाई लालभाई

उत्तरप्रदेश और बम्बई प्रान्त में महावीर जयन्ती की छुट्टी बन्द

यह लिखते हुये दु:ख है कि कितने ही वर्षों तक प्रयत्न कर प्रान्तों और केन्द्र सरकार से महावीर जयंती की आम छुट्टी स्वीकृत कराई। इस वर्ष उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र बम्बई प्रान्त में यह छुट्टी बन्द कर दी है। सिर्फ जैनधर्म की छुट्टी एक होती थी, वह भी दोनों प्रान्तों में बंद कर दी है। संवतसरी की बम्बई प्रान्त में छुट्टी स्वीकृत थी, वह भी इस वर्ष बंद कर दी है। महावीर जयन्ती की पुन: आम छुट्टी दोनों प्रान्तों में कराने के लिये प्रधान, मंत्री हीराचंद जैन श्री महावीर जैन सभा मांडवला राजस्थान ने टेलीग्राम और रिपोर्ट भेजकर जोरदार मांग की है और करते ही रहेंगे—जब तक पुन: छुट्टी स्वीकृत नहीं हो जावे—तब तक मांग पर मांग करते रहेंगे। भारतीय जैनों से निवेदन है कि निम्न जगह टेलीग्राम रिपोर्ट भेजकर मांग करें। अवश्य ही हमारी मांग पर ध्यान देकर जैनसंघ तार-रिपोर्ट होम मिनिस्टर लखनऊ और होम मिनिस्टार बम्बई को भेजकर हमें सूचित करने का कष्ट करायेंगे—

To
Home Minister
Jain Public Unhappy Mahaveer Jayanti Holiday Struck off from The Holiday List. Pray Grant This Holiday.

रतलाम :—हमने पर्युषणपर्व में ही श्री कनुभाई की प्रेरणा से श्री संभवनाथ दिगंबर जैन पाठशाला में वीतराग विज्ञान विद्यापीठ, जयपुर का पाठक्रम चालू कर दिया था। पिछले दिनांक ६ व ८ फरवरी को उक्त पाठ्यक्रम के अनुसार लेखिक व मौखिक परीक्षाएँ सदस्यों के समक्ष ली गई। बालक-बालिकाओं ने बड़े ही उत्साह एवं लगनपूर्वक तैयारी की थी। इतनी अधिक रुचि थी कि बिना प्रवेशपत्र भरे ही २३ बालकों की परीक्षा लेनी पड़ी। 'वीतराग विज्ञान पाठमाला' (भाग १-२-३) की पुस्तकें सबने देखी तो सबको ऐसा लगा कि वास्तव में इन पुस्तकों की लेखन-शैली सरल एवं सारगर्भित है और बालक बड़ी आसानी से समझ सकते हैं।

मोहनलाल छाबड़ा
मंत्री-संभवनाथ दिगंबर जैन पाठशाला
रतलाम (म.प्र.)

आवश्यक सूचना

दिनांक १५ मई ७१ से ४ जून ७१ तक टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में श्री पूज्य कानजीस्वामी के सानिध्य में आयोजित श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ के प्रशिक्षण व शिक्षण-शिविर में आनेवाले बहुत से अध्यापक बंधुओं के आने की सूचना प्राप्त हो चुकी है। जिन अध्यापक महानुभावों ने शिक्षण शिविर में आने की सूचना अभी तक न भेजी हो, वे शीघ्र भेजें, तथा प्रौढ़ शिक्षणवर्ग एवं बाल शिक्षणवर्ग में लाभ लेने आनेवाले महानुभाव भी सूचित करें।

परीक्षा बोर्ड की ग्रीष्मकालीन परीक्षायें ३१ मई को होंगी।

हुकमचंद शास्त्री,
श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड
ए-४, बापूनगर-जयपुर-४ (राज.)

आवश्यक विज्ञप्ति

यदि ग्राहक संख्या पर्याप्त हो जाये तो निम्नोक्त ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना है:—

१- पुरुषार्थसिद्धि-उपाय (स्व. पंडित टोडरमलजीकृत हिन्दी टीका)

२- मोक्षशास्त्र (संग्राहक-श्री रामजीभाई माणेकचंद दोशी) करीब ८०० पृष्ठ

३- समयसार प्रवचन (भाग ३-४-५)

४- आत्मप्रसिद्धि (समयसारजी में ४७ शक्तियों का वर्णन है, उस पर स्वामीजी के विस्तृत प्रवचन)

प्रथम ग्राहक बनना आवश्यक है। डिपाजिट नहीं लिया जाता। सिर्फ आप अपनी आवश्यक प्रतियों की संख्या सूचित करें। जहाँ मुमुक्षु मंडल हो, वहाँ उसके द्वारा सूचना भिजवायें।

पता—श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नये प्रकाशन

'श्री समयसार नाटक' की २५०० प्रतियाँ छपते ही बिक गई हैं—जो पहले से ग्राहक बन चुके थे, उन्हें भिजवायी जा रही हैं। नये आर्डर अब न भेजें।

'श्री अष्टपाहुड़' (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत) तैयार हो रहा है। इसके अनुवाद में खूब परिश्रम किया गया है। सुंदर छपाई, पृष्ठ संख्या करीब ३६०, बड़ी साइज में है। मूल्य अभी निश्चित नहीं हुआ है। जिन्होंने पहले से आर्डर लिखाये हैं, वे अपनी पुस्तकों की संख्या तथा अपना पता आदि निम्न पते पर भेजें। यह ग्रंथ सेठी ग्रंथमाला, बम्बई द्वारा प्रकाशित हुआ है।

पता:—

कमल प्रिंटर्स, मदनगंज-किशनगढ़ (राज.)

प्रेस में—श्री 'समयसार' (मूल ग्रंथ), श्री 'समयसार प्रवचन' (भाग १ तथा २), 'ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव', 'सम्यग्दर्शन', 'दसलक्षण धर्म', 'अनुभवप्रकाश' छप रहे हैं।

आत्मधर्म का वार्षिक चन्दा

— विज्ञप्ति —

आत्मधर्म (हिन्दी) का नया वर्ष वैशाख महीने से प्रारंभ हो रहा है। वार्षिक चंदा ३) तीन रुपया है। कृपया आगामी वर्ष का चंदा हमें मनीआर्डर से भिजवा दें। संस्था की ओर से वी.पी. नहीं की जाती। यदि आप आत्मधर्म वी.पी. से मँगवाना चाहें तो हमें सूचित करें।

जिन भाइयों के रुपये हमारे यहाँ जमा हैं, उन्हें एक कार्ड लिखा जायेगा और उनकी स्वीकृति मिलने पर वह रुपये 'आत्मधर्म का चंदा' रूप में ले लिये जायेंगे।

मुमुक्षु मंडलों से निवेदन है कि वे अपने नगर के ग्राहकों का चंदा एकत्रित करके उनके पूरे पते सहित हमें भिजवा देवें। चंदे की रकम ड्राफ्ट द्वारा भिजवायें।

चंदा भेजनेवाले ग्राहकों से निवेदन है कि अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें जिससे आत्मधर्म नियमित मिलता रहे। चंदा भेजते समय सूचित करें कि आप नये ग्राहक हैं या पुराने। यदि पुराने ग्राहक हैं तो नंबर भी अवश्य लिखें। आशा है हमें आपका पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

पता — श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

चिदानंदस्वरूप में ही मगन रहो

तिहुँकालमाहिं जे जे शिवपंथ साधतु हैं,
रहत उपाधि आप ज्ञान जोतिधारी हैं।
देखैं चिनमूरतिकौं आनंद अपार होत,
अविनासी सुधारस पीवैं अविकारी हैं॥
चेतना विलासकौ प्रकाश सो ही सार जान्यौ,
अनुभौ रसिक है सरूप के सँभारी हैं।
कहै 'दीपचंद' चिदानंदकौं लखत सदा,
ऐसैं उपयोगी आपपद अनुसारी हैं॥

❀❀❀

अलख अखंड जोति ज्ञानकौ उद्योत लीएं,
प्रगट प्रकास जाकौ कैसे है छिपाइए।
दरसन-ज्ञानधारी अविकारी आत्मा है,
ताहि अवलोकिकैं अनंत सुख पाइए॥
सिवपुरी कारण निवारण सकल दोष,
ऐसै भाव भएँ भवसिंधु तिरि जाइए।
चिदानंद देव देखि वाही मैं मगन हूजे,
यातैं और भाव कोउ ठौर न अनाइए॥

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं
अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	शास्त्र का अर्थ समझने की पद्धति	०.१०
१७	श्रावक धर्मप्रकाश	२.००
१८	अष्ट-प्रवचन (भाग-१)	१.५०
१९	अष्ट-प्रवचन (भाग-२)	१.५०
२०	मोक्षमार्गप्रकाशक	२.५०
२१	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	१.००
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२४	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२७	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२८	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२९	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
३०	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र)	६.००
३१	मोक्षमार्गप्रकाशक ७वाँ अध्याय	०.५०
३२	जैन बालपोथी भाग-२	०.४०
३३	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत) पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	प्रेस में
३४	तत्त्वनिर्णय	०.२०
३५	शब्द-कोष	०.२०
३६	हितपद संग्रह (भाग-२)	०.७५

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)